भारत का विधि आयोग

एक सौ सत्रहवीं रिपोर्ट

न्यायिक अधिकारियों का प्रशिक्षण

नवम्बर, 1986

349.54 R

अर्ध शास० पत्र क्र० एफ 2(6)/85--वि० आ०

श्री अशोक कुमार सेन,
विधि और न्याय मंत्री,
भारत सरकार,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली ।

28 नवम्बर, 1986

प्रिय विधि और न्याय मंत्री जी,

विधि आयोग की एक सौ सोलहवीं रिपोर्ट अग्रेषित करते हुए, मेरे द्वारा कल भेजे गए पत्र के तुरन्त पश्चात्, मैं विधि आयोग की एक सौ सत्रहवीं रिपोर्ट, जो न्यायिक सुधारों के अध्ययन के सन्दर्भ में निर्देश के निबन्धनों की मद क्र० 5 "न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण" विषय से संबंधित है, प्रेषित कर रहा हूं।

न्यायसंगत रूप से यह मानते हुए कि आपको वर्तमान विधि आयोग द्वारा भेजी गई रिपोर्टें पढ़ने का समय और अवसर मिला होगा, आपके ध्यान में आया होगा कि वे एक श्रृंखला के स्वरूप की हैं और उनमें एक विषय से दूसरे विषय पर अविच्छिन्नता है। उदाहरणस्वरूप प्रथम रिपोर्ट में, ग्रामीण क्षेत्रों में विवादों के समाधान के तन्त्र की विवेचना की गई है और इस प्रकार वह ग्रामीण जनता की आवश्यकताओं की पूर्ति करने की व्यवस्था करती है और न्यायालयों में आने वाले 60 प्रतिशत मुकदमे उसकी परिधि में आते हैं। न्यायिक सुधारों के अध्ययन के सन्दर्भ में निर्देश के निबन्धनों की मद क्र० 1 का एक भाग उसमें समाविष्ट है; द्वितीय रिपोर्ट में कराधान विधियों के अधीन के विवादों के संबंध में कार्यवाही करने वाले न्यायालयों के इस दृष्टि से पुनर्गठन पर विचार किया गया है कि उन विवादों का निपटारा शीघ्र हो सके और मुकदमों की बहुलता को रोका जा सके। उसमें अन्तर्निहित प्रवृत्ति उच्च न्यायालयों का बोझ कम करने और उन्हें लंबित मामलों को निपटाने में सहायता देने की थी। वह न्यायिक सुधारों के अध्ययन के सन्दर्भ में निर्देश के निबन्धनों की मद क्र० 1 (तीन) के संबंध में थी।

तृतीय रिपोर्ट में, अखिल भारतीय न्यायिक सेवा के गठन पर, जो विषय इसके पूर्व उल्लिखित निर्देश के निबन्धनों की मद क्र० 9 से संबद्ध था, विचार किया गया है।

यह रिपोर्ट, जैसा कि पूर्व में बताया गया है, मद क्र० 5 से संबंधित है और उसमें विभिन्न स्तरों पर न्यायिक अधिकारियों को प्रशिक्षित किए जाने की स्कीम की सिफारिश की गई है। आप यह पाएंगे कि यह न्यायिक सुधारों का सूत्रपात करने के विषय पर एक श्रृंखला स्थापित करती है, अर्थात् अधिकारियों को विवादों के समाधान की आधुनिक पद्धतियों का प्रशिक्षण देना, न्याय को सहभागी बनाना जिससे न्याय प्रणाली की साख पुनः स्थापित हो सके, न्यायपालिका का अखिल भारतीय स्तर पर पुनर्गठन करना और उस पहलू पर विचार करना जिसका बकाया मुकदमों का ढेर लगाने में सबसे अधिक योगदान रहा है। आप अनुभव करेंगे कि यदि श्रृंखला की कोई भी कड़ी टूट जाती है तो सब कुछ अस्त व्यस्त हो जाता है।

मुझे प्रसन्नता होगी यदि विधि और न्याय मंत्रालय विधि आयोग को इन रिपोर्टों के विषय में की गई अनुवर्ती कार्यवाही से तथा उनके कार्यान्वयन में अनुभव की जाने वाली कठिनाइयों से अवगत कराता रहता है जिससे कि दोनों ओर से कार्यवाही की जाकर इन समस्याओं को हल किया जा सके जो न्यायिक सुधारों के मार्ग में आती हैं।

सादर,

भवदीय,

संलग्न--रिपोर्ट

डी० ए० देसाई

विषय-वस्तु

		पृष्ठ
अध्याय 1	प्रारम्भिक	1–2
अध्याय 2	प्रशिक्षण देने का औचित्य	3–10
अध्याय 3	विधि आयोग का दृष्टिकोण	11
अध्याय 4	प्रशिक्षण की स्कीम	12–15
अध्याय 5	पाठ्य विवरण	16–17
अध्याय 6	अध्यापक वर्ग	18
अध्याय 7	अकादमी का गठन और आनुषंगिक प्रबंधकीय पहलू	19
अध्याय 8	क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्र	20
उपाबंध 1		21–23
उपाबंध 2		24–28

PARLIAMENT LIBRARY
Central Govt. Publications)
Acc. No. ... 79721(2)
Date ... 1/12/1989

अध्याय 1

प्रारम्भिक

1.1. किसी भी संगठन का--जो सेवोन्मुख स्वरूप का हो--मूल्यांकन (क) उसके उद्देश्यों--लक्ष्यों--परिणामों को प्राप्त करने की कार्यक्षमता, और (ख) परिणामों को प्राप्त करने के लिए आन्तरिक "दक्षता" की अभिवृद्धि के अनुसार किया जा सकता है। वे लक्ष्य या उद्देश्य क्या हैं जिनकी प्राप्ति के लिए न्यायदान प्रणाली की खोज की गई थी? भारतीय न्यायिक पद्धति का उद्भव निश्चित रूप से औपनिवेशिक है और उसकी संरचना अत्यासित है। स्वतंत्रता प्राप्ति के विगत चार दशकों में, उसके ढंग, कार्य पद्धति, पदाभिधानों, भाषा, दृष्टिकोण, विवादों को सुलझाने की पद्धति में लेशमात्र परिवर्तन हुए बिना, उसमें विदेशी शासकों द्वारा स्थापित प्रणाली की सभी साजसज्जा विद्यमान है।

स्वतंत्रता प्राप्त होने पर, इस प्रणाली से रातों-रात यह अपेक्षा की गई कि वह गणतंत्रात्मक भारत में सामाजिक क्रांति का सूतपात करने वाला प्रभावी साधन होगा। जनवरी, 1950 में संविधान के प्रवृत्त होने पर, इस प्रणाली से आशा की गई कि वह अपने को इस प्रकार अनुकूलित करेगी कि जिससे भारतीय समाज को राष्ट्र के रूप में रूपांतरित करने में सुगमता हो सके और वह अनुच्छेद 38 के आदेश को कार्यान्वित करने के लिए प्रभावी साधन बने। राज्य न्यायिक शक्ति के प्रयोग के लिए न्यायपालिका एक महत्वपूर्ण माध्यम होने के कारण उसे कल्याणकारी राज्य की, जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की समस्त संस्थाओं को अनुप्रमाणित करेगा, स्थापना करने के लिए अन्य स्कन्धों के साथ दायित्व निभाना था। उसे न केवल व्यक्तियों के बीच बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में निवास करने वाले और विभिन्न पेशों में लगे व्यक्तियों के समूहों के बीच प्रास्थिति, सुविधाओं और अवसरों की असमानताओं को समाप्त करने के मूल उत्तरदायित्व का भी निर्वहन करना चाहिए। उसका एक अतिरिक्त उत्तरदायित्व नागरिकों के मूल अधिकारों के संरक्षण के लिए संरक्षक देवदूत की भूमिका का निर्वाह करना था। इस प्रकार, न्यूनाधिक रूप से विधि और व्यवस्था प्रवर्तन के तंत्र के रूप में कार्य करने वाली पूर्णतः औपनिवेशिक संस्था से उसे सतर्क प्रहरी बनना था।

मानव संसाधन किसी भी संगठन के निश्चायक तत्व होते हैं। मानव संसाधनों की गुणवत्ता और परिमाण संगठन की प्रभावकारिता तथा साथ ही उसकी कार्यक्षमता के स्तर को सार्थक रूप से प्रभावित करते हैं। मानव संसाधनों की निश्चायकता, बहुधा दोहराई जाने वाली इस लोकोक्ति में प्रतिबिम्बित होती है कि कोई भी संगठन (उसकी संरचना और प्रणालियों को सम्मिलित करते हुए) उतना ही अच्छा होता है जितने कि उनको चलाने वाले व्यक्ति। एक ओर व्यक्तियों के ज्ञान, कुशलता और नैतिकता की प्रकृति और दूसरी ओर उद्देश्यों का उनका मूल्यांकन और उनके प्रति उनकी प्रतिबद्धता, संगठन की आन्तरिक कार्यक्षमताओं और बाह्य प्रभावकारिता के लिए निर्णायक तत्व हैं।[1]इस प्रकार, यदि किसी संगठन के मानव संसाधन संगठन के महत्वपूर्ण भाग होते हैं, तो इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि उसे लोगों की आशाओं और आकांक्षाओं, न्याय प्रणाली से उनकी मांगों और समाज की समसामयिक आवश्यकताओं, विधि के क्षेत्र में गवेषणा, समाज में विवादों का समाधान करने की नवीन और पुनरीक्षित पद्धतियों, असमान व्यक्तियों से मिलकर बनने वाले समाज में समानता के बोध और संविधान के लक्ष्यों के संबंध में अद्यावधिक होना चाहिए। इसके अतिरिक्त, भारतीय समाज निरन्तर परिवर्तन की स्थिति में है। प्रौद्योगिकी विकास और विकास योजनाओं के प्रभाव के कारण वह नई चुनौतियों और समस्याओं का सामना कर रहा है। भोपाल गैस त्रासदी ने भारतीय न्याय प्रणाली और उसमें नियुक्त कार्मिकों के समक्ष अनेक चुनौतियां खड़ी कर दी हैं और इस पर भी, मुख्य न्यायमूर्ति वारेन बरगर ने अमेरिका के बार एसोसिएशन को संबोधित करते हुए जो कहा था, वह आज की भारतीय न्यायदान प्रणाली को यथावश्यक परिवर्तन सहित लागू होता है। उन्होंने कहा था, "शताब्दी के अंतिम तृतीय भाग में, हम अब भी न्यायालयों को मूलतः उन्हीं आधारित पद्धतियों, उन्हीं प्रक्रियाओं और उसी तंत्र के साथ चलाने की कोशिश कर रहे हैं जिनके बारे में रोसको पाउन्ड ने 1906 में कहा था कि वे पर्याप्ततः अच्छी नहीं है।[2]लार्ड डेवलिन ने ब्रिटिश न्याय प्रणाली के बारे में जो कहा था, वह हमारी न्याय प्रणाली के संबंध में भी उतना ही सही है। उन्होंने कहा था, "यदि हमारी कारबार की पद्धतियां उतनी ही प्राचीन होती जितनी कि हमारी विधिक प्रणाली है तो हम बहुत पहले दिवालिया राष्ट्र बन गए होते।" इस प्रकार यदि इस बात से इंकार नहीं किया

1. डा० जी० आर० एस० राव, वरिष्ठ संकायाध्यक्ष, पब्लिक पालिसी एण्ड सिस्टम्स एरिया, एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कालेज, हैदराबाद आयोग को प्रस्तुत की गई टीप--सितम्बर 1986।

2. 1970--अमेरिका के बार एसोसिएशन को मुख्य न्यायमूर्ति वारेन बरगर का संबोधन।

अध्याय 2

प्रशिक्षण देने का औचित्य

2.1 अभी तक, तकनीकी प्रशिक्षण देने की आवश्यकता को उसकी यथोचित मान्यता नहीं मिली है। न्यायिक सेवा में प्रवेश के लिए सेवा–पूर्व संस्थागत प्रशिक्षण पर उच्च न्यायालयों तथा भारत के उच्चतम न्यायालय या सरकार का ध्यान केन्द्रित नहीं हुआ है। यह माना जाता था कि न्यायिक सेवा में प्रवेश करने के पूर्व, बार में कुछ वर्षों के विधि व्यवसाय से उस न्यायालय की, जिसमें किसी व्यक्ति को नियुक्त किया जाता है, अध्यक्षता करने के हेतु समर्थ होने के लिए यथोचित प्रशिक्षण प्राप्त हो जाएगा। तत्पश्चात्, सेवा में नए भरती हुए व्यक्तियों को लगभग तीन मास तक की कालावधि तक उन न्यायालयों में, जिनकी अध्यक्षता वरिष्ठ न्यायाधीशों द्वारा की जाती है, लगा कर व्यावहारिक प्रशिक्षण देने की स्कीमें बनाई गई। प्रेक्षण और अनुभव को प्रशिक्षण का तरीका माना गया। न्यायिक अधिकारियों के लिए व्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम की आवश्यकता पर विचार करने के पूर्व, हमें सभी ओर दृष्टिपात करना होगा और न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण की आवश्यकता और उसकी व्याप्ति के संबंध में जानकारी एकत्रित करनी होगी।

2.2 फ्रांस ने नेपोलियन के प्रसिद्ध कथन का अवलंब लेते हुए संस्थागत प्रशिक्षण की आवश्यकता को स्वीकार किया था, जब उन्होंने कहा था :—

> "सामरिक गुणों की केवल कुछ परिस्थितियों में आवश्यकता होती है। नागरिक गुणों का, जो एक सच्चे न्यायाधीश के विशिष्ट लक्षण होते हैं; जनता की प्रसन्नता पर प्रतिक्षण प्रभाव पड़ना है।"

फ्रांस में कोई व्यक्ति स्नातक उपाधि प्राप्त करने के पश्चात्, बार में कोई अर्हक पूर्वतन–विधि व्यवसाय किए बिना, न्यायिक सेवा में प्रवेश कर सकता है। इस पद्धति ने बार में प्रतीक्षा अवधि के जोखिम के बिना, प्रतिभावान युवा व्यक्तियों को सेवा के प्रति आकृष्ट किया है। यह विश्वास किया जाता था कि बार में किसी प्रकार का विधि व्यवसाय किए बिना, सेवा में सीधे प्रवेश से बार के कुछ वरिष्ठ सदस्यों के प्रति प्रवेशार्थियों की संभाव्य निष्ठा और साथ ही किसी निजी हित, जिसने उसे विधिक कार्य उपलब्ध कराया हो, के प्रति उनकी किसी आसक्ति की संभावना समाप्त हो जाएगी। न्यायिक अधिकारियों को प्रशिक्षण देने के लिए, न्याय मंत्रालय ने न्यायपालिका के लिए राष्ट्रीय अकादमी स्थापित की है जो एक स्वशासी निकाय है। प्रशासन प्राचार्य में निहित है जिसकी सहायता व्यावहारिक प्रशिक्षण के प्रभारी उप–प्राचार्य तथा अध्ययन निदेशक द्वारा की जाती है। अध्यापन कर्मचारिवृन्द में विधि के आचार्य और प्रवाचक और प्राचार्य द्वारा सलाहकार बोर्ड के परामर्श से, नियुक्त किए गए वरिष्ठ न्यायिक अधिकारी है। न्यायिक सेवा में भर्ती के लिए प्रतिवर्ष प्रतियोगी परीक्षा आयोजित की जाती है जो 27 वर्ष या उससे कम आयु के और विधि स्नातक की उपाधि रखने वाले पुरुषों और स्त्रियों के लिए खुली है। भरती परीक्षा के परिणाम के आधार पर बनाई गई योग्यता–क्रम सूची के अनुसार की जाती है। विधि संकाय के साथ संबद्ध न्यायिक अध्ययन संस्थान, प्रतियोगी परीक्षा में बैठने की तैयारी करने के लिए शिक्षण देता है। लिखित परीक्षा में सामान्य संस्कृति पर निबन्ध, सिविल विधि में एक और दाण्डिक विधि या लोक विधि में दूसरा परीक्षण तथा दस्तावेजों की सहायता से न्यायिक प्रश्नों पर टीप लेखन सम्मिलित है। उन व्यक्तियों को, जो लिखित परीक्षा में अर्हित होते हैं, मौखिक परीक्षा देनी होती है जिसमें परीक्षकों के बोर्ड के साथ 30 मिनट का वार्तालाप, विधि की विभिन्न शाखाओं में 15–15 मिनट के पांच मौखिक परीक्षण और विदेशी भाषा में 30 मिनट का परीक्षण सम्मिलित हैं।[1]

साधारणतः, भरती मुख्यतः प्रतियोगी परीक्षा में बैठने वाले नए स्नातकों के स्रोत से की जाती है। यदि आवश्यकता हुई तो अधिवक्ताओं, नोटरियों, सरिश्तादारों, विधिक क्रियाकलापों का विशेष ज्ञान रखने वाले सरकारी सेवकों तथा विधिक क्षेत्र में विशिष्ट स्थान रखने वाले अन्य व्यक्तियों में से भी कुछ व्यक्तियों को परीक्षा ली जाने के पश्चात् रखा जा सकता है बशर्ते उन सभी के पास विधि स्नातक की उपाधि हो।

प्रशिक्षण 28 मास तक चलता है और उसमें सम्मिलित है 9 मास के लिए अकादमी में प्रशिक्षण, व्यावहारिक प्रशिक्षण की कालावधि, अंतिम परीक्षा के पश्चात् उस न्यायालय में, जिसमें अधिकारी को प्रथमतः तैनात किया जाना हो, दो मास का अंतिम व्यावहारिक प्रशिक्षण और न्यायपालिका की विशिष्ट शाखाओं से एक में चार मास की कालावधि का विशेषीकृत प्रशिक्षण, जो न्यायिक अधिकारियों के रूप में उनकी नियुक्ति के चार वर्ष के भीतर पूरा किया जाना चाहिए।[1]

1. डेविड अन्नौस्सामी, लीगल प्रोफेशन : कमेन्टस, नोट्स और डाकुमेंन्ट्स : जुडिशियरी इन फ्रांस : जनरल आफ दी बार काउंसिल आफ इंडिया (1981) खण्ड 8, पृ० 296।

जा सकता कि न्यायाधीशों को अद्यावधिक होना चाहिए और वे अपने ही जोखिम पर पीछे रह सकते हैं तो अद्यावधिक होने की
बात इस विषय पर आधुनिक साहित्य पढ़ने के न्यायाधीश के स्वैच्छिक प्रयास पर नहीं छोड़ी जा सकती। निचले स्तर पर, जहां
कि ज्ञान को अद्यतन बनाने की आवश्यकता तीव्रता से महसूस की जाती है, ऐसा साहित्य उपलब्ध होने में होने वाली कठिनाई,
स्थिति को और मुश्किल बना देती है। इस प्रकार, कार्य सम्पादन में सुधार लाने और दक्षता बढ़ाने की दृष्टि से, प्रत्येक स्तर
पर के न्यायपालिका के सदस्यों को प्रशिक्षण देने की आवश्यकता को अतिरंजित नहीं किया जा सकता। ज्ञान शक्ति है और यह
केवल प्रशिक्षण की सुविधाओं द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। यह स्वीकार किया जाता है कि प्रशिक्षण, कर्त्तव्य करने के लिए
अपेक्षित प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता को सार्थक रूप से बढ़ा सकता है। न्यायिक अधिकारियों की दशा में तो यह बात और भी
सार्थक है क्योंकि विधि का सामाजिक विज्ञान, समाज के विकास के साथ नया और अधिकाधिक महत्वपूर्ण होता जा रहा है। अतः, उनके
ज्ञान, कौशल और उनकी अभिवृत्ति को तीव्र बनाना आवश्यक है। आधारिक स्तर पर सहभागी न्याय (Participatory Justice)
का समावेश करने संबंधी विधि आयोग की रिपोर्ट[1] में और अखिल भारतीय न्यायिक सेवा की सिफारिश करने वाली रिपोर्ट[2]
में, विधि आयोग ने न्यायिक अधिकारियों के लिए, सेवा-पूर्व और सेवाकालीन प्रशिक्षण के निरन्तर तथा उत्तरोत्तर चलने वाले
कार्यक्रम की आवश्यकता की पुनरावृत्ति की है।

इस प्रकार इस रिपोर्ट में, विधि आयोग को न्यस्त किए गए न्यायिक सुधारों के सन्दर्भ में निर्देश के निबन्धनों की मद 5, जो न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण से संबंधित है, के संबंध में विचार किया गया है।

1. भारत का विधि आयोग—एक सौ चौदहवीं रिपोर्ट, 1986।
2. भारत का विधि आयोग—एक सौ सोलहवीं रिपोर्ट, 1986।

2.4 सेवा-पूर्व और सेवाकालीन दोनों प्रशिक्षण प्रदान करने की आवश्यकता एक लम्बे समय से महसूस की जाती रही है किन्तु उसे अभी तक राष्ट्रीय स्तर पर नकारा जाता रहा है जिसके परिणाम न्यायपालिका के विकास के लिए दुर्भाग्यपूर्ण रहे हैं।[1] न्यायिक कर्मिकों की अदक्षता, अनुभवहीनता और ज्ञान की अपर्याप्तता, शताब्दी के पांचवे दशक के प्रारम्भ में प्रकाश में आयी थी। न्यायिक अधिकारियों की दक्षता में वृद्धि करने के हेतु उनके लिए प्रशिक्षण पाठ्यक्रम अनिवार्य समझा गया था। तीन मास से लेकर दो वर्ष तक किसी न किसी प्रकार का प्रशिक्षण प्रचलन में रहा है। प्रशिक्षण के विषय थे: सिविल और दाण्डिक मामलों के विचारण कार्य का और कुछ दशाओं में राजस्व कार्य तथा प्रशासनिक कार्य का व्यावहारिक अनुभव।[2] उस समय दृष्टिकोण यह था कि प्रशिक्षण न्यायाधीश को दिन प्रतिदिन के मामलों में कार्यवाही करने और अपना कार्यालय का प्रभावकारी ढंग से प्रबन्ध करने के लिए समर्थ बनाने तक ही सीमित होना चाहिए। प्रशिक्षण के संबंध में यह संकुचित दृष्टिकोण एक लंबे समय तक प्रचलित रहा। आठवें विधि आयोग ने, विचारण न्यायालयों में विलम्ब और बकाया मामलों के प्रश्न पर विचार करते समय, यह राय व्यक्त की थी कि अधीनस्थ न्यायपालिका में भरती किए गए नए व्यक्तियों के लिए तीन से छह मास तक विस्तारित होने वाले प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम की व्यवस्था अवश्य की जानी चाहिए। इस कालावधि का उपयोग बार के दक्ष और अनुभवी सदस्यों द्वारा न्यायिक अधिकारियों को गहन प्रशिक्षण दिए जाने के लिए किया जाना था और पाठ्यचर्या में, नए भरती किए गए न्यायिक अधिकारियों को मामलों के विभिन्न प्रक्रमों के संबंध में कार्यवाही करने संबंधी प्रक्रियागत अपेक्षाओं से अवगत कराने पर बल दिया गया था। यह सुझाव दिया गया था कि प्रशिक्षण, नए भरती किए गए न्यायिक अधिकारियों को इस बात का शिक्षण देने के लिए उद्दिष्ट होना चाहिए कि विवाधक विरचित करने के पूर्व पक्षकारों के कथनों का अभिलेखन किस प्रकार किया जाना चाहिए, विवाधकों को कैसे विरचित किया जाना चाहिए और उसके पश्चात् साक्ष्य किस प्रकार अभिलिखित किया जाना चाहिए और निर्णय किस प्रकार लिखे जाने चाहिए। अन्तर्वर्ती आदेश लिखने की कला के संबंध में भी प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। उन्हें निष्पादन कार्यवाहियों के विभिन्न प्रक्रमों से परिचित कराया जा सकता है और उन्हें इस बात का भी प्रशिक्षण दिया जा सकता है कि मामलों को, उन प्रक्रमों से प्रत्येक प्रक्रम पर किस प्रकार निपटाया जाना चाहिए।[3] सन् 1983 में हुई उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों के सम्मेलन में एक संकल्प अंगीकार किया गया था जिसमें सरकार से अधीनस्थ न्यायपालिका के सदस्यों के लिए देश के चार परिक्षेत्रों में क्षेत्रीय प्रशिक्षण संस्थान स्थापित करने का अनुरोध किया गया था जिनमें प्रख्यात आचार्यों, वकीलों, न्यायाधीशों और विधिवेत्ताओं को विभिन्न विधिक तथा अन्य महत्वपूर्ण विषयों पर व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया जा सकता था। न्यायपालिका के सदस्यों को दिए जाने वाले प्रशिक्षण की व्यापकता और उसकी विषय-वस्तु को उपदर्शित करने वाले नए दृष्टिकोण की स्पष्ट व्याख्या की गई थी।

2.5 इस संकल्प के अनुसरण में, भारत सरकार के न्याय विभाग ने न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए प्रत्येक राज्य में उपलब्ध सुविधाओं के बारे में राज्य सरकारों और संघ राज्य क्षेत्रों से जानकारी इस दृष्टि से एकत्रित की थी कि क्षेत्रीय प्रशिक्षण संस्थानों की स्थापना करने की साध्यता पर विचार किया जा सके। एकत्रित की गई जानकारी सारणीबद्ध की जाकर, उपाबन्ध 1 के रूप में इसके साथ संलग्न की गई है जिस पर दृष्टि डालने से यह ज्ञात हो सकेगा कि न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए प्रत्येक राज्य में क्या सुविधाएं उपलब्ध हैं।

जानकारी का विश्लेषण करने से यह ज्ञात होता है कि वर्तमान में संस्थागत प्रशिक्षण केवल उत्तर-पूर्वी न्यायिक अधिकारी प्रशिक्षण संस्थान, गुवाहाटी और आन्ध्र प्रदेश राज्य न्यायिक प्रशिक्षण प्रशासनिक अकादमी, सिकन्दराबाद में दिया जा रहा है। मोटे तौर पर, इन संस्थानों में प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले न्यायिक अधिकारियों को न्यायालय में कार्यवाहियों के संचालन तथा सहबद्ध विषयों और साथ ही कार्यालय प्रबन्ध के अल्पकालीन सेवा-पूर्व प्रशिक्षण की सुविधा मिलती है। इन संस्थानों में कोई पुनश्चर्या पाठ्यक्रम आयोजित नहीं किया जा रहा है जिसका परिणाम यह है कि प्रशिक्षण सेवा-पूर्व स्तर पर प्रारम्भ होकर उसी स्तर पर समाप्त हो जाता है और वह अल्प अवधि का होता है। नैनीताल में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रशासनिक प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किया गया है जिसमें न्यायिक अधिकारियों को छह सप्ताह से आठ सप्ताह तक का सेवा-पूर्व प्रशिक्षण दिया जाता है। उड़ीसा राज्य द्वारा अंगीकृत किए गए सुसंगत नियमों में विस्तृत प्रशिक्षण कार्यक्रम की व्यवस्था की गई है। देश के शेष भाग में, न्यायिक सेवा में भरती किए गए नए अधिकारियों को वास्तविक पदस्थापना की जाने के पूर्व, वरिष्ठ सिविल न्यायाधीशों और/या जिला या सेशन न्यायाधीशों के साथ तीन से छः मास तक की औसत अवधि के लिए काम करने का निदेश देकर केवल प्रतीयमान प्रशिक्षण दिया जाता है।

2.6 विद्यमान प्रशिक्षण स्कीमों में एक गंभीर कमी यह है कि वे कुछ चुने हुए व्यक्तियों को अपराध शास्त्र और न्यायालयिक विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा संचालित "अपराध और न्याय और अपराध विज्ञान" के प्रशिक्षण में सम्मिलित होने के

1. भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार को भेजी गई रूप-रेखा।

2. भारत के विधि आयोग की चौदहवीं रिपोर्ट, खण्ड 1, अध्याय 9, पैरा 42-46, पृ० 178-179।

3. भारत का विधि आयोग, सत्तरवीं रिपोर्ट, पैरा 9.8, पृ० 34।

प्रशिक्षण, न्यायिक अधिकारी के कर्तव्य का सम्पादन करने के लिए अपेक्षित वृत्तिक तकनीक में पर्याप्त निपुणता प्रदान करने के लिए उद्दिष्ट है। प्रशिक्षण के दौरान, कार्य प्रणाली पर सेमीनार और व्याख्यान, तथा विशेष विषयों पर व्याख्यान आयोजित किए जाते हैं। व्यावहारिक प्रशिक्षण न्यायालयों में दिया जाता है। उन्हें, निर्णय पर पहुंचने के लिए न्यायिक अधिकारियों की खण्ड पीठों के विचार-विमर्श का प्रेक्षण भी करने दिया जाता है। यहां इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि प्राचीन फ्रेंच कहावत "एकल न्यायाधीश निष्पक्ष न्यायाधीश नहीं होता" का अनुवर्तन करते हुए, फ्रान्स में निम्नतम न्यायालय को छोड़कर प्रत्येक न्यायालय में न्यायाधीश की न्यायपीठ की व्यवस्था की जाती है और किसी भी उच्च स्तरीय न्यायालय में एकल न्यायाधीश विनिश्चय नहीं करता।[1] इससे उन्हें निर्णय पर पहुंचने के लिए न्यायिक अधिकारियों के विचार-विमर्श को देखने-सुनने का अवसर मिलता है। यदाकदा, उन्हें अपनी राय व्यक्त करने के लिए भी कहा जाता है। प्रशिक्षण के भाग के रूप में, प्रशिक्षार्थियों को अल्प कालावधियों के लिए पुलिस स्टेशनों, कारागारों, अपचारी-गृहों, औद्योगिक और वाणिज्यिक समुत्थानों में और कुछ दशाओं में विदेशों में भी भेजा जाता है। प्रशिक्षण के अन्त में, अंतिम परीक्षा होती है जिसमें अन्य बातों के अलावा:—

(1) निर्णय प्रारूपण; और

(2) दाण्डिक या सिविल अभिवचन का 15 मिनट का मौखिक परीक्षण समाविष्ट होता है। संस्थागत और व्यावहारिक प्रशिक्षण की आवश्यकता पर विशिष्ट रूप से बल देने के लिए, फ्रांस की प्रणाली को यहां विस्तार से उद्धृत किया गया है।

2.3 जापान के संविधान के अनुच्छेद 80 में यह उपबंध है कि अवर न्यायालयों के न्यायाधीशों की नियुक्ति मंत्रिपरिषद् द्वारा, उच्चतम न्यायालय द्वारा नामनिर्दिष्ट व्यक्तियों की सूची में से की जाएगी। साधारणतया, उच्चतम न्यायालय की सिफारिश सदैव मान ली जाती है। अवर न्यायालयों के न्यायाधीशों की पदावधि 10 वर्ष की होती है। सामान्यतया, उनकी पुनर्नियुक्ति की जाती है। यदि उच्चतम न्यायालय पुनर्नियुक्ति की सिफारिश नहीं करता तो न्यायालय को, महाभियोग सरीकी पद्धति के बिना, न्यायिक पद से हटा दिया जाता है। न्यायालय अधिनियम के अनुसार, अवर न्यायालयों के न्यायाधीशों के चार प्रवर्ग होते हैं। वे हैं :—

(1) उच्च न्यायालयों के अध्यक्ष;

(2) न्यायाधीश;

(3) सहायक न्यायाधीश; और

(4). समरी कोर्ट के न्यायाधीश।

ध्यान देने योग्य बात यह है कि सहायक न्यायाधीशों की नियुक्ति उन व्यक्तियों में से की जाती है जिन्होंने विधिक प्रशिक्षण और अनुसंधान संस्थान में, जो उच्चतम न्यायालय का अभिकरण है, दो वर्ष का प्रशिक्षण पूरा कर लिया हो। पहले परीक्षा उत्तीर्ण कर लेने के पश्चात्, समरी कोर्ट के न्यायाधीश:—

(1) या तो उन व्यक्तियों में से नियुक्त किए जाते हैं जिन्होंने कम से कम तीन वर्ष तक सहा० न्यायाधीश, लोक अभियोजक या विधि व्यवसायी एटर्नी के रूप में सेवा की हो, या

(2) उन व्यक्तियों में से नियुक्त किए जाते हैं जिनके पास समरी कोर्ट के कर्त्तव्यों का संपादन करने के लिए आवश्यक ज्ञान और अनुभव हो, जैसे वे व्यक्ति जो न्यायिक कार्य में कई वर्षों से लगे हुए हों और जिनकी सिफारिश उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई हो।[2]

इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि आधारिक स्तर पर सहायक न्यायाधीशों के रूप में प्रवेश उन व्यक्तियों में से होता है जिन्होंने इसमें इसके पूर्व वर्णित संस्थान में दो वर्ष का प्रशिक्षण पूरा कर लिया हो। संस्थान में प्रवेश करने के पूर्व, अभ्यर्थी के लिए यह आवश्यक है कि उसने राष्ट्रीय विधिक परीक्षा उत्तीर्ण कर ली हो। संस्थागत प्रशिक्षण में कक्षा में शिक्षण, व्यष्टिक न्यायाधीशों के मार्गदर्शन में क्षेत्र प्रशिक्षण, आदि की और प्रारूपण में पाठ्यक्रम की व्यवस्था की जाती है। दो वर्ष तक चलने वाला पाठ्यक्रम पूरा करने और परीक्षा में अर्ह होने पर, कोई व्यक्ति सहायक न्यायधीशों के रूप में नियुक्त किया जाने के लिए पात्र हो जाता है।[2]

1. श्री लाडरसिंग मेहता, दी फ्रेंच लीगल सिस्टेम, जनरल सेक्शन आल इंडिया रिपोर्ट

2. हिडू तनका (सम्पादित) : दी जापानीज लीगल सिस्टेम, अध्याय 6, सेक्शन 2, पृ० 554 से 566।

2.9 आयोग को यह सूचित किया गया था कि उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों, राज्य के मुख्यमंत्रियों और विधि मंत्रियों के संयुक्त सम्मिलन के संकल्प के परिणामस्वरूप भारत सरकार के न्याय विभाग ने हमारे विचारार्थ प्रशिक्षण की एक अनंतिम स्कीम बनाई थी । ऐसा प्रतीत होता है कि स्कीम की एक संक्षिप्त रुपरेखा बनाई गई थी । वास्तव में यह, न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण के प्रश्न पर क्या दृष्टिकोण होना चाहिए उसकी संक्षिप्त रूपरेखा है । न्याय विभाग को संभाव्यत: यह ज्ञात नहीं था कि व्यापक न्यायिक सुधारों के संबंध में सिफारिश करने वाला विधि आयोग, भारतीय न्यायिक सेवा नाम से अभिहित की जाने वाली अखिल भारतीय न्यायिक सेवा स्थापित करने की साध्यता और औचित्य पर विचार करेगा । विधि आयोग ने भारतीय न्यायिक सेवा के, जिसमें विधि स्नातकों में से भरती प्रतियोगी परीक्षा के परिणाम के आधार पर की जाएगी, स्थापना की जाने के संबंध में व्यापक रिपोर्ट प्रस्तुत की है।[1] न्यायिक सेवा में किसी भी प्रक्रम पर प्रवेश के लिए बार में कुछ अवधि के न्यूनतम विधि व्यावसाय की अनिवार्य अर्हता संबंधी पूर्व स्वीकृत सिद्धान्त को विधिमान्य और तर्कयुक्त कारणों से अमान्य कर दिया गया है । भारतीय न्यायिक सेवा के संबंध में सिफारिश के एक बार कार्यान्वित हो जाने पर, और सेवा के वस्तुत: स्थापित हो जाने पर, प्रशिक्षण देने के सम्पूर्ण क्षेत्र को एक नया आयाम मिल जाएगा। यह टिप्पण इस धारणा पर अग्रसर होता है कि सेवा-पूर्व और सेवाकालीन दोनों ही प्रशिक्षण, न्यायिक सेवा में भरती किए जाने वाले ऐसे व्यक्तियों को दिया जाना होगा जिन्होंने कुछ न्यूनतम अवधि तक बार में कार्य किया हो । यह धारणा अब आगे मान्य नहीं रहेगी । अत:, इस योजना पर, जो भी उसका महत्व हो, भले ही विचार किया जाए, इस प्रश्न पर नए दृष्टिकोण से विचार करना आवश्यक है ।

2.10 इस स्कीम की रुपरेखा में संस्थागत और सेवाकालीन प्रशिक्षण पर विचार किया गया है । कालावधि विनिर्दिष्ट किए बिना यह सुझाव दिया गया है कि राज्य सिविल कार्यपालिक सेवा और राज्य पुलिस सेवा में भरती किए गए अधिकारियों को प्रशिक्षण देने के लिए विद्यमान संस्थागत सुविधाओं का उपयोग, न्यायिक सेवा की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए उनमें यथोचित वृद्धि करके न्यायकि सेवा में भरती किए गए व्यक्तियों को प्रशिक्षण देने के लिए किया जाना चाहिए। इस स्कीम में यह भी उपबन्ध किया गया है कि न्यायिक सेवा में भर्ती किए गए व्यक्तियों के प्रशिक्षण की कालावधि वही होनी चाहिए जितनी कार्यपालिक और पुलिस सेवाओं के लिए होती है । सेवा-पूर्व प्रशिक्षण के विषयों में सम्मिलित हैं: (1) भारत के संविधान की प्रमुख विशेषताएं ; (2) सिविल विधि, दांडिक विधि और श्रम विधि; (3) स्थानीय विधियां; (4) पुलिस ज्यादतियों और कस्टम्स और अन्य आर्थिक अपराधों से संबंधित विधि; (5) सेवा या नियोजन से संबंधित विधि; (6) न्याय पंचायतें आदि ; (7) पुलिस और सिविल कार्यपालिक अधिकारियों से संबंध ; (8) अनुसूचित जातियों/जनजातियों अन्य पिछड़े समुदायों तथा कमजोर वर्गों की समस्याएं, कौटुम्बिक विवाद; (9) जेल प्रशासन; (10) वे प्रहलू जिनके संबंध में अधीनस्थ न्यायालयों के पीठासीन अधिकारियों को इस दृष्टि से सावधानी बरतनी चाहिए कि मामले के निपटारे में होने वाले विलम्ब को कम से कम किया जा सके और न्यायालयों में लम्बित मामलों की संख्या कम की जा सके ; निर्णय लेखन की कला; (11) भारत में विधिक और न्यायिक प्रणाली का ऐतिहासिक विकास; और (12) सांस्कृतिक और सामाजिक दशाएं और विधिक और न्यायिक प्रशासन पर उनका प्रभाव । स्कीम में उन न्यायिक अधिकारियों के लिए जिन्होंने आठ से दस वर्ष तक सेवा की है अल्पकालीन पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों के लिए उपबन्ध किया गया है । स्कीम के अनुसार पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों में निम्नलिखित सम्मिलित होना चाहिए: (1) विगत 10 से 15 वर्षों में संविधान तथा सिविल दांडिक और अन्य विधियों के संशोधन; (2) निर्णयज विधि—उच्चतम न्यायालय/उच्च न्यायालयों के निर्णय ; (3) आर्थिक विधियों और सांविधिानिक विधि के क्षेत्र में नए परिवर्तन; (4) कार्यालय प्रबन्ध की आधुनिक पद्धतियां जिनमें दस्तावेजीकरण और न्यायिक अभिलेखों का भाण्डागारण सम्मिलित है; (5) आधुनिक जेल प्रशासन; (6) न्यायालयों में मामलों के शीघ्र निपटारे तथा लंबित मामलों की संख्या कम करने के उपाय; और (7) अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों, अन्य पिछड़े समुदायों और कमजोर वर्गों की समस्याएं, कौटुम्बिक विवाद । इसमें पूर्व में निर्दिष्ट 1975 के सम्मिलन में अंगीकृत संकल्प को उद्धृत करने के पश्चात् स्कीम के निर्माताओं ने नए क्षेत्रीय प्रशिक्षण संस्थान की स्थापना के प्रति अप्रसन्नता व्यक्त की है क्योंकि उसमें बहुत व्यय अन्तर्वलित होगा और इसलिए यह सुझाव दिया है कि आन्ध्र प्रदेश राज्य में विद्यमान संस्थागत व्यवस्थाओं को और असम, मेघालय, मनीपुर और नागालैण्ड की सरकारों द्वारा गुवाहाटी में स्थापित संस्थान का विस्तार करने की साध्यता पर विचार किया जाना चाहिए। उसमें भारतीय विधि संस्थान दिल्ली में पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों के लिए सुविधाओं की व्यवस्था की जाने का भी सुझाव दिया गया है । यह स्कीम की संक्षिप्त रूपरेखा है।

2.11 इस प्रक्रम पर कतिपय उन सुझावों का उल्लेख किया जा सकता है जो आयोग को न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए सुविधाओं की व्यवस्था के लिए ठोस प्रस्तावों की खोज करने के दौरान प्राप्त हुए हैं । यह खोज बहुमुखी थी क्योंकि वह, प्रशिक्षण देने के लिए संस्था का ढांचा क्या होना चाहिए बढ़ाए जाने वाले विषयों, प्रशिक्षण की अवधि और

1. भारत सरकार का विधि आयोग, एक सौ सोलहवीं रिपोर्ट ।

लिए भेजने के अलावा, सेवाकालीन प्रशिक्षण या पुनश्चर्या पाठ्यक्रम की व्यवस्था नहीं करती और कुछ अन्य अधिकारियों को भा तीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली द्वारा संचालित "दाण्डिक न्याय प्रशासन" पाठ्यक्रम में सम्मिलित होने के लिए भेजा जा है। इन पाठ्यक्रमों की अवधि एक सप्ताह से तीन सप्ताह तक की होती है।

वर्तमान स्कीमों में एक अन्य खामी यह है कि उनमें केवल मामलों के संचालन के बारे में, न्यायालयों में प्रेक्षण द्वा व्यावहारिक प्रशिक्षण पर बल दिया गया है। इस प्रणाली में अन्तर्निहित दोष यह है कि भूतकालीन पद्धति को, किसी परिवर्तन के बि या उसे आज के लोकाचार के अनुरूप बनाने का प्रयास किए बिना, उसी रूप में बनाए रखा गया है। संक्षेप में, प्रशिक्षण का आध भूत लक्ष्य प्रशिक्षार्थियों को न केवल अपने कार्य के औजारों से सुसज्जित करना है वरन् उन्हें यह दर्शन दृष्टि प्रदान करना है कि उ प्रणाली से, जिसमें वे कार्य करते हैं, क्या आशा की जाती है। न्याय का क्या अर्थ है ? विनिश्चयन प्रक्रिया क्या है ? संविधान के ल क्या है ? वह दिशा कौन सी है जिसमें विधि को गतिमान होना चाहिए ? सूक्ति "विधि के अनुसार न्याय" की क्या विवक्षाएं है

2.7 क्या ये सुविधाएं न्यायिक अधिकारियों को सेवा-पूर्व और सेवाकालीन आवश्यक प्रशिक्षण देने के वि यथोचित रूप से पर्याप्त हैं। इन प्रशिक्षण सुविधाओं की अपर्याप्तता स्पष्ट दिखाई देती है। यह न केवल विधि आयोग व वरन् सभी संबंधितों की राय है। अगस्त–सितम्बर, 1985 में भारत के मुख्य न्यायामूर्ति तथा विधि और न्या मंत्रालय ने भारत के इतिहास पहली बार संयुक्त रूप से उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों तथा सभी राज के मुख्य मंत्रियों का सम्मेलन वर्तमान न्यायदान प्रणाली की व्याधियों के संबंध में विचार–विमर्श करने और रोग निदान करने के पश्चात् उपचार खोजने और विहित करने के प्रयोजन के लिए बुलाया था। न्यायिक अधिकारियों को प्रि क्षण देने का प्रश्न सबसे प्रमुख था। इस सम्मेलन में सर्वसम्मति से यह संकल्प किया गया था कि न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्ष के लिए एक संस्थान या अकादमी होनी चाहिए जिसकी स्थापना केन्द्रीय सरकार द्वारा भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की अध्यक्ष में की जानी चाहिए। भारत के मुख्य न्यायमूर्ति की अध्यक्षता में एक शासी निकाय स्थापित किया जाना चाहिए जो इस संस्थ या अकादमी का भारसाधक होगा। शासी निकाय को न्यायिक अधिकारियों के सेवा-पूर्व और सेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए पू स्कीम बनानी थी और साथ ही वे स्थान विनिर्दिष्ट करने थे जहां संस्थान या अकादमी की शाखाएं स्थापित की जानी चाहि वास्तव में आशा यह थी कि शासी निकाय अकादमी की रूपरेखा तैयार करेगा, अकादमी, संकाय में प्रवेश के लिए व्यक्तियों का चय करेगा, पाठ्य–विवरण तैयार करेगा और संस्था या अकादमी के दक्ष कार्यकरण से संबंधित समस्त पहलुओं के संबंध में कार्यवा करेगा।

इसके पश्चात् विधि आयोग से, व्यापक न्यायिक सुधारों की सिफारिश करने के भाग के रूप में यह अनुरोध कि गया था कि वह न्यायपालिका के सदस्यों को प्रशिक्षण देने के औचित्य, आवश्यकता और प्रवर्ती अपेक्षाओं का अध्ययन करे आयोग ने अपनी स्वयं की जांच प्रारम्भ की।

2.8 पूर्वोक्त संकल्प के अनुसरण में, भारत के मुख्य न्यायाधीश ने, न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण हेतु अकादमी स्थापना के लिए एक स्कीम की रूपरेखा तैयार करके भेजी। विधि और न्याय राज्य मंत्री ने रूपरेखा की एक प्रति वि आयोग को विचारार्थ भेजी। चूंकि यह रिपोर्ट अनन्यतः हर स्तर पर न्यायिक अधिकारियों को प्रशिक्षण देने से संबंधित अतः भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा तैयार की गई रूपरेखा पर इस रिपोर्ट के अनुक्रम में पूरे सम्मान के साथ विचार कि जाएगा। जैसी कि परिपाटी रही है, विधि आयोग ने, विचाराधीन विषय से संबद्ध समस्त विषयों से सुसंगत विभिन्न धारा और प्रतिधाराओं से अवगत कराने की दृष्टि से, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति, उच्चतम न्यायालय के समस्त न्यायाधीशों विस्तृत पत्र सम्बोधित किए, जिनमें उनसे अन्य बातों के अलावा, न्यायिक सुधारों से सुसंगत विभिन्न विषयों पर, जिनमें एक न्यायिक अधिकारियों का प्रशिक्षण भी है, अपने विस्तृत विचारों से आयोग को अवगत कराने का अनुरोध किया गया। चू प्रशिक्षण का प्रश्न विशेषज्ञ शिक्षा शास्त्र के क्षेत्र से संबंधित है, आयोग ने देश के प्रत्येक विधि महाविद्यालय के प्राचार्यों विस्तृत पत्र लिखकर यह अनुरोध किया कि वे उसे उनके साथ कार्य करने वाले आचार्यों को ध्यान में लाएं। आयोग ने प्रत्ये विश्वविद्यालय के विधि संकायों के अध्यक्षों और भारतीय विधि संस्थान, भारतीय लोक प्रशासन अकादमी तथा निदेश प्रशासनिक स्टाफ कालेज, हैदराबाद को भी पत्र लिखे। भारतीय विधिज्ञ परिषद् यह दावा करती है कि विधिक शिक्षा अ सहबद्ध विषयों के लिए उत्तरदायित्व केवल उसी का है। तदनुसार, आयोग ने भारतीय विधिज्ञ परिषद् के अध्यक्ष और विधि राज्य विधिज्ञ परिषदों के अध्यक्षों को यह अनुरोध करते हुए पत्र लिखे कि वे न्यायिक सुधारों से सुसंगत समस्त विषयों विशिष्टतः न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण को सम्मिलित करते हुए, अपने विचार आयोग को सूचित करें। विधिज्ञ परि के अध्यक्ष ने पत्र भेजने का सौजन्य नहीं बताया और उसे पूरी तरह अपेक्षित कर दिया। राज्य विधिज्ञ परिषदों के उ पूर्णतः अपर्याप्त थे। आयोग ने उच्चतम न्यायालय के बार एसोसिएशन और इसी प्रकार के अन्य निकायों और न्यायिक अ कारियों के संगठनों के विचार भी आमंत्रित किए। अन्य सभी ने उत्साहपूर्वक उत्तर दिए। आयोग को पारदेशीय विचार एक बड़ी सीमा तक उपलब्ध हैं।

क्षेत्र में आन्तरिक और बाह्य परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए, विशिष्ट विषय आरक्षित रखे जाने चाहिए, और न्यायिक सेवा में प्रवेश के समय से पुनश्चर्या पाठ्यक्रम की तारीख तक दोनों के बीच का अन्तर किसी भी दशा में पांच वर्ष से अधिक नहीं होना चाहिए ।

भारतीय लोक प्रशासन संस्थान पुनश्चर्या पाठ्यक्रम आयोजित करता है और इस संबंध में उसके पास विशेषज्ञय ज्ञान है। उसकी राय यह थी कि प्रत्येक न्यायिक मजिस्ट्रेट को, इसके पूर्व कि वह अपर जिला न्यायाधीश के स्तर पहुंचने के योग्य हो, तीन प्रशिक्षण कार्यक्रम पूरे करने चाहिए । उसकी यह राय थी कि सेवा-पूर्व प्रशिक्षण पाठ्यक्रम डेढ़ वर्ष की कालावधि का होना चाहिए और सेवा के 6 से 10 वर्ष के अन्तराल पर एक मास का पुनश्चर्या पाठ्यक्रम, सेवा के 10 से 16 वर्ष पश्चात् दो सप्ताह का पुनश्चर्या पाठ्यक्रम और सेवा के 16 से 20 वर्ष के पश्चात् एक सप्ताह का सेमीनार होना चाहिए । उसकी यह राय थी कि उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों का तीन दिन के सम्मिलन (द्विवार्षिक) और उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायमूर्तियों के वार्षिक सम्मिलन का उपयोग हायर और हायेस्ट कोर्टों के न्यायाधीशों को विधि के समाजशास्त्र के विकास से अवगत कराने के लिए भी किया जा सकता है । यह सुझाव दिया गया था कि इस प्रकार के सम्मिलन का अल्प अवधि के लिए उपयोग, दिए गए निर्णयों के परिणामों से उनको स्वयं को अवगत कराने के लिए भी किया जा सकता है ताकि यह अवधारित किया जा सके कि विकास सही दिशा में हुआ है या नहीं ।

बार के एक सदस्य ने यह राय व्यक्त की कि न्यायिक सेवा में प्रवेश करने वाले व्यक्तियों को संस्थागत प्रशिक्षण, जिसमें बहुत अधिक खर्च होगा, देने की बजाय, कानूनी तौर पर इस बात के लिए उपबन्ध करना लाभप्रद होगा कि किसी भी व्यक्ति के पास, जो अधीनस्थ न्यायिक सेवा ज्वाइन करना चाहता है, अनन्यतः या तो सिविल या दाण्डिक न्यायालयों में विधि व्यवसाय करने वाले वरिष्ठ वकीलों के अधीन छह-छह मास का यथोचित अनुभव होना चाहिए, जो कि, उनके अनुसार, ऐसे व्यक्ति को कारगर और दक्ष-न्यायाधीश बनने के लिए सक्षम बनाने हेतु यथोचित प्रशिक्षण प्रदान करेगा। तीन वर्षीय ला डिग्री पाठ्यक्रम के सूत्रपात के पूर्व, बार में विधि व्यवसाय करने के इच्छुक किसी व्यक्ति के लिए यह अनिवार्य था कि वह अभिभाषण की कला में प्रशिक्षित होने के लिए स्वयं को किसी वरिष्ठ वकील के अधीन एक वर्ष की कालावधि के लिए नामांकित करवाए। प्रशिक्षण की इस पद्धति का मूल्यांकन करने के पश्चात्, उसे बाइज्जत दफना दिया गया है। उसे भूतकाल से, जिसमें उसे दफना दिया गया है, वापस लेकर प्रतिष्ठापित करना संभव नहीं है ।

कुछ उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों ने आयोग के प्रश्न का उत्तर दिया। सर्वश्री सतीशचन्द्र और पी०डी० देसाई ने अपने प्रस्ताव संयुक्त रूप से प्रस्तुत किए। यह सुझाव दिया गया था कि भारतीय न्यायिक सेवा में प्रवेश करने वाले व्यक्ति से प्रशिक्षण प्राप्त करने की अपेक्षा की जानी चाहिए। उनके अनुसार, सीधे भरती किए गए किसी व्यक्ति को $1\frac{1}{2}$ वर्ष का संस्थागत प्रशिक्षण और 6 मास का प्रशिक्षण न्यायालय में दिया जाना चाहिए और सेवा में प्रोन्नत किए गए व्यक्ति को संस्थान में 6 मास का प्रशिक्षण प्राप्त करना चाहिए। जब पद्रोन्नत किए गए किसी व्यक्ति को वरिष्ठ वेतनमान में प्रोन्नत किया जाता है तब संस्थान में अतिरिक्त प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। पाठ्यचर्या के प्रश्न पर, उन्होंने यह राय व्यक्त की कि वह मुख्य न्यायमूर्तियों की समिति द्वारा यथोचित रूप से विहित किया जा सकता है। उन्होंने इस परन्तुक की सिफारिश की कि किसी भी ऐसे व्यक्ति को, जिसे 50 वर्ष या उससे अधिक आयु में भारतीय न्यायिक सेवा में प्रोन्नत किया जाता है, किसी प्रशिक्षण में जाने या कोई विभागीय परीक्षा उत्तीर्ण करने से छूट प्राप्त होगी। लगभग ऐसी ही स्कीम की सिफारिश हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय द्वारा की गई थी। मद्रास उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायमूर्ति श्री चान्दोरकर की राय यह थी कि सेवा में नियुक्त किए गए प्रत्येक व्यक्ति से यह अपेक्षा की जाएगी कि वह एक वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त करें, जिसकी समाप्ति पर उसे विभागीय परीक्षा उत्तीर्ण करनी चाहिए । उनके मत में, किसी भी ऐसे व्यक्ति को, जो सेवा में 50 वर्ष आयु में या उसके पश्चात् प्रोन्नत किया जाता है, प्रशिक्षण प्राप्त करने से छूट प्राप्त होगी ।

एक और मुख्य न्यायमूर्ति से प्राप्त एक और सुझाव यह था कि न्यायिक सेवा में प्रवेश करने वाले व्यक्तियों को औचित्य, निष्पक्षता, वस्तुनिष्ठता और कार्यपालिका के हस्तक्षेप से स्वतंत्रता जैसे विषयों पर प्रशिक्षण देने के लिए न्यायिक प्रशासन विद्यालय की स्थापना की जानी चाहिए । उनके अनुसार, उन्हें व्यक्तिगत पूर्वाग्रह और विचारधारा से मुक्त होकर न्याय प्रशासन का कार्य करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है । मुख्य न्यायमूर्ति से आने वाला एक सुझाव यह था कि सेवा में प्रवेश करने पर, न्यायिक अधिकारी को, उच्च न्यायालय द्वारा प्रत्येक मामले में अवधारित की जाने वाली अवधि के लिए, शिक्षु के रूप में पदाभिहित किया जा सकता है और उसे स्वतंत्र प्रभार में तब तक नहीं रखा जाना चाहिए जब तक कि उच्च न्यायालय का यह समाधान न हो जाए कि वह अपने समक्ष आने वाले मामलों में कार्यवाही करने में समर्थ है । उनकी राय में, प्रशिक्षण, समस्त स्तरों पर न्यायालयों में प्रेक्षण के रूप में हो सकता है और साथ

आनुषंगिक और सम्बद्व विषयों से संबंधित थी । ख्यातिप्राप्त विधिक शिक्षाविद के शब्दों में प्रशिक्षण देने का मूल उद्देश्य, प्रशिक्षण पाठ्यक्रम पर केन्द्रित होना चाहिए । उनके शब्दों में न्यायिक प्रक्रिया की सम्पूर्ण संकल्पना का रुपान्तरण हो चुका है, उदाहरणार्थ विवादग्रस्त दावों के न्यायनिर्णयन से रचनात्मक विवाद-निश्चयन प्रक्रिया में रूपान्तरण जिसमें इस प्रक्रिया के माध्यम से प्रतिस्पर्धी हितों का सकल सामाजिक हितों में अधिकाधिक अभिवृद्धि करने की दृष्टि से सन्तुलन अन्तर्वलित है और इस प्रकार यह उपयोगी होगा कि यदि विवादों के निश्चयन की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से लगे न्यायिक अधिकारियों को विधायी और न्यायिक क्षेत्रों में उत्पन्न होने वाली नई प्रवृत्तियों से परिचित कराया जाता है।

प्रशिक्षण के लिए पाठ्यक्रम में सम्मिलित किए जाने वाले विषयों के संबंध में परम्परागत रूपरेखा पर मोटे तौर पर सहमति थी । जो प्रश्न उठाया जा सकता है वह यह है कि न्यायाधीशों को किन विषयों में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए? परंपरागत रूप से उत्तर था——न्यायालय का प्रबन्ध, विधि में हुए वर्तमान परिवर्तन निर्णय लेखन, बार के तौर तरीकों से निपटना, निर्धन व्यक्तियों के मानव अधिकारों के लिए उत्कण्ठा। इनमें संविधान के लक्ष्यों और उद्देश्यों विशेषतः उनका जो संविधान के भाग 4 में वर्णित हैं न्याय प्रणाली के लक्ष्यों और उद्देश्यों तथा भारत गणराज्य में न्याय-विधि प्रणाली की भूमिका को समाविष्ट किया जा सकता है ।

अगला प्रश्न जो उठाया गया था, वह था सेवा-पूर्व और सेवाकालीन कार्यशाला प्रशिक्षण की समय सीमा, पुनश्चर्या पाठ्यक्रम, आदि । उसमें यह प्रश्न भी सम्मिलित होगा कि प्रशिक्षण, जो हर स्तर पर भिन्न होगा, किस स्तर तक के न्यायिक अधिकारियों को प्राप्त करना चाहिए । प्राप्त हुए विचारों तथा की गई चर्चाओं से इस संबंध में जो चित्र उभरता है, वह एक प्रमुख शिक्षाविद् के शब्दों में यह था कि उसे एक ही प्रयास में पूरा नहीं किया जा सकता । शैक्षणिक अर्हताओं और बार में विधि व्यवसाय की अवधि पर निर्भर करते हुए, सेवा-पूर्व प्रशिक्षण 1 से 2 वर्ष से 3 से 6 मास तक का हो सकता है। पुनश्चर्या पाठ्यक्रम 12 से 18 मास की अवधि के हो सकते हैं। प्रशिक्षण कार्यक्रम में, सेवा-पूर्व प्रशिक्षण के अतिरिक्त, निरन्तर सेवाकालीन प्रशिक्षण भी होना चाहिए ।

संकाय के गठन के प्रश्न पर, उन व्यक्तियों को, जिन्होंने आयोग के प्रश्नों के उत्तर दिए थे, आम तौर से यह राय रही है कि, विधि शिक्षाविदों, न्यायाधीशों और बार के कुछ प्रमुख सदस्यों को संकाय का सदस्य होने के लिए बुलाया जाना चाहिए । यह कहा गया था कि, "भारत में यह एक बहुत सामान्य भूल है कि ज्ञान आवश्यक रूप से वरिष्ठता, आयु और अधिश्रेणिक अवस्थिति के अनुपात में बढ़ता है।"[1] सुझाव यह था कि इस अमान्य धारणा को अस्वीकार करते हुए, वकीलों, न्यायाधीशों और शिक्षाविदों को उनकी विशेषित योग्यता के लिहाज से इस कार्य में लगाया जाना चाहिए । स्वीकार करने योग्य एक नया सुझाव यह था कि "न्याय प्रशासन से पीड़ित व्यक्तियों को भी प्रशिक्षण में योगदान करने के लिए आमंत्रित किया जाना चाहिए ।" एक सुझाव यह था कि जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के प्रख्यात नागरिकों को भी, जो विधि के क्षेत्र में प्रत्यक्ष रूप से विशेषज्ञता रखने का दावा नहीं करते, आमंत्रित किया जाना चाहिए । एक शिक्षाविद् ने यह विचार व्यक्त किया कि "यदि संविधान की आधारशिला समाज है, जो विधि द्वारा शासित की जाती है न कि व्यक्ति द्वारा, और यह कि समाज का सम्पूर्ण रूपान्तरण विधि द्वारा किया जाना है तो उन्हें, जो उन विधियों को कार्यान्वित करने के लिए उत्तरदायी हैं, विधि और न्याय के सिद्धान्तों से अवगत होना चाहिए ।" यह कहा गया था कि न्यायिक सेवा में प्रवेश करने वाले व्यक्तियों के मानस में विधि और न्याय का पारस्परिक संबंध दृढ़ता के साथ बिठाया जाना चाहिए । लगभग इसी प्रकार के अन्य अनेक सुझाव थे जो मुख्यतः प्रक्रिया विधियों (सिविल प्रक्रिया संहिता और दण्ड प्रक्रिया संहिता) को लागू करने, दाण्डिक विधि, विशेषतः भारतीय दण्ड संहिता, भारतीय साक्ष्य अधिनियम और कुछ स्थानीय विधियों की समझ पर ध्यान केन्द्रित करते थे।

सेवा-पूर्व प्रशिक्षण के समय बढ़ाए जाने वाले विषयों के संबंध में दो सुभिन्न प्रवृत्तियां देखी गई । एक दृष्टिकोण यह था कि प्रक्रिया -विधियों का कार्यसाधक ज्ञान, विलम्ब को कम करने और न्यायालय के समक्ष लाए गए मामलों और विवादों के शीघ्र निपटारे में सहायक होगा । दूसरा दृष्टिकोण यह था कि न्याय प्रणाली का लक्ष्य उससे भिन्न नहीं है जो संविधान के प्रस्तावनात्मक कथन में प्रतिष्ठापित है, अर्थात् समाज को इस प्रकार रूपांतरित करना जिसमें मनुष्य का मनुष्य द्वारा शोषण नहीं होगा, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय राष्ट्रीय जीवन की समस्त संस्थाओं को, जिसके अन्तर्गत न्यायपालिका भी है, अनुप्राणित करेगा । अतः संविधान के लक्ष्यों के संबंध में विशेष प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए जिससे कि न्याय प्रणाली, समाज के रूपांतरण में अपना प्रभावकारी योगदान कर सके । इस प्रयोजन के लिए, यह सुझाव दिया गया था कि पाठ्यक्रम की योजना पहले सेवा-पूर्व प्रशिक्षण के लिए बनाई जानी चाहिए और पुनश्चर्या पाठ्यक्रम के लिए विधि और न्याय प्रशासन के

1. डा० उपेन्द्र बक्शी, भारत के विधि आयोग को प्रस्तुत की गई विस्तृत टीप ।

अध्याय 3

विधि आयोग का दृष्टिकोण

3. विधि आयोग ने अपनी एक सौ सोलहवीं रिपोर्ट में भारतीय न्यायिक सेवा के गठन की सिफारिश की है, जिसमें भरती तीन स्वतंत्र स्रोतों से की जाएगी (एक) प्रतियोगी परीक्षा के परिणाम के आधार पर सीधी भरती द्वारा, (दो) राज्य न्यायिक सेवा से प्रोन्नति द्वारा, और (तीन) बार के वरिष्ठ और अनुभवी सदस्यों में से सीधी भरती द्वारा। चिरकालीन दृष्टिकोण में, न्यायिक सेवा में निम्नतम सोपान पर प्रवेश के लिए अर्हित होने के पूर्व, न्यायालयों में दो से तीन वर्ष के विधि व्यवसाय की कल्पना की गई है। संविधान के अनुच्छेद 233(2) में, जिला न्यायाधीश के स्तर पर या उस स्तर पर, जिस रूप में कि उस शब्द की अनुच्छेद 236 में व्याख्या की गई है, सेवा में प्रवेश हेतु अर्हित होने के लिए, बार में कम से कम सात वर्ष का विधि व्यवसाय विहित किया गया है। बार में एक निश्चित अवधि के लिए विधि व्यवसाय को, न्यायिक सेवा में प्रवेश करने वाले व्यक्तियों को, मामलों और विवादों में विधि के अनुसार प्रभावकारी ढंग से कार्यवाही करने और उनका निश्चयन करने के लिए समर्थ बनाने के लिए उचित समझा गया था। इस दृष्टिकोण में अन्तर्निहित धारणा यह थी कि कुछ निश्चित वर्षों तक बार में विधि व्यवसाय व्यक्ति को न केवल विचारण के विभिन्न प्रक्रमों और उनके संबंध में कार्यवाही करने की पद्धति से कार्यसाधक रूप से परिचित कराता है, वरन् न्यायालय के कार्यकरण से भी जिससे कि न्यायिक सेवा में प्रवेश करने वाले व्यक्ति के बारे में यह धारणा की जा सकती है कि वह न्यायाधीश के कर्त्तव्यों का सम्पादन करने में यथोचित रूप से साधन सम्पन्न है। इस तथ्य के अलावा कि यह धारणा पूर्णतः असमर्थनीय है,[1] चूंकि अब नए विधि स्नातकों को न्यायिक सेवा में प्रवेश का अवसर दिया जा रहा है, सेवा-पूर्व प्रशिक्षण, जिसकी आवश्यकता, जैसा कि पूर्व में दीर्घकाल से तीव्रता से महसूस की जाती रही है, सेवा में प्रवेश के लिए अनिवार्य अर्हता, अर्थात् बार में विधि व्यवसाय, को समाप्त करने के क्रान्तिकारी परिवर्तन के कारण और भी बढ़ गई है। विधि की उपाधि, सम्भाव्यतः, उसके धारक को विधि के तत्वों से अवगत कराएगी। वकालत की कला, बार में विधि व्यवसाय के दौरान सीखी जाती है। न्याय करना अपने आप में एक कला है और कला के तत्वों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए, प्रशिक्षण आवश्यक है। न्याय करने की न्यूनतम योग्यता प्राप्त करने के लिए, भूसे में से धान निकालने, झूठ को देख पाने, संबंधित दावों का मूल्यांकन करने, साक्ष्य का मूल्यांकन करने, निष्पक्ष और संतुलित दृष्टिकोण अपनाने, समाज की आवश्यकताओं को समझने, सांविधानिक लक्ष्यों को हृदयंगम करने के लिए प्रखर प्रतिमा और इनसे भी अधिक न्याय करने की उत्कृट इच्छा की आवश्यकता होती है। विधि महाविद्यालयों में विहित किए गए पाठ्यक्रमों में इनमें से कोई भी पहलू का समावेश नहीं किया गया है। यदि ऐसे संवेदनशील व्यक्तियों को, जिनके मस्तिष्क आज के बारे में प्रचलित कुछ अवांछनीय आचारों से दूषित नहीं हुए हैं, अन्य व्यक्तियों के अलावा, ऐसे न्यायाधीशों द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है जिनने न्याय करने की कला में निपुणता प्राप्त कर ली है तो इन गुणों को प्राप्त किया जा सकता है। अतः नए विधि स्नातक को अच्छा न्यायाधीश बनने के लिए सुसज्जित करने हेतु प्रशिक्षण अपरिहार्य है। इसी प्रकार, उन व्यक्तियों को भी, जो राज्य न्यायिक सेवा में आधारिक स्तर पर प्रवेश करते हैं, न्याय करने की कला में प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी। जबकि दोनों के ही बारे में, प्रशिक्षण के आधारभूत सिद्धान्त एक से होंगे, सेवा में प्रवेश के लिए पात्र होने के संबंध में विहित की गई न्यूनतम अर्हताओं पर निर्भर करते हुए, प्रशिक्षण की अवधि में अन्तर हो सकता है। विधि आयोग को, दोनों ही स्तरों पर सेवा-पूर्व संस्थागत तथा व्यावहारिक प्रशिक्षण की आवश्यकता की पूर्ति के लिए व्यवस्था करनी होगी।

1. सिविल जस्टिस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट, पैरा 8, पृ 183 में यह विचार व्यक्त किया है कि "कुछ प्रान्तों में प्रवृत्त नियम में कम्यर्थियों से की गई इस अपेक्षा से कि उन्होंने बार में तीन वर्ष या उससे अधिक कालावधि के लिए विधि व्यवसाय किया हो, यह गारंटी नहीं निकली कि अभ्यर्थियों ने वास्तविक रूप से कोई, उपयोगी अनुभव प्राप्त किया हो।"

ही उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों और वरिष्ठ जिला और सेशन न्यायाधीशों द्वारा व्याख्यानों और प्रवचनों की व्यवस्था की जा सकती है।

किसी भी न्यायदान प्रणाली का मुख्य लक्ष्य न्याय करना होता है। भारतीय स्थिति के सन्दर्भ में, सामाजिक न्याय करना न्याय प्रणाली की अनिवार्यता है। चाहे इस प्रणाली को "न्यायिक प्रक्रियात्मक तटस्थता" की स्थिति क्यों न अपनानी हो, उसे संविधान द्वारा आदेशित परिवर्तन की मांग के प्रति स्वयं को प्रतिबद्ध करना होगा।

'The shift in the objectives of change, (with both value and materialistic orientations) emerge from the preemblar statement to the constitution in forms of secularism, socialism, egalitarianism. This is juxtaposed to the existing realities in terms of abuse and misuse of law where "Rule of Law is operating more as a mask for the Rule of Class" as B. P. Thompson observes."[1]

केरल उच्च न्यायालय के स्टाफ एसोसिएशन ने यह राय व्यक्त की कि विधि महाविद्यालयों में अर्जित अपर्याप्त ज्ञान को दृष्टिगत रखते हुए, अब अधिक गहन प्रशिक्षण दिए जाने की आवश्यकता है। यह सुझाव दिया गया था कि प्रशिक्षण, न्यायालयों में व्यावहारिक कार्यकरण तथा उन व्यक्तियों से, जो विधि और सम्बद्ध विषयों का अच्छा ज्ञान रखते हैं, चर्चा के स्वरूप का होना चाहिए।

विधि महाविद्यालयों से संबद्ध प्राचार्यों और कुछ वकीलों से भी सुझाव प्राप्त हुए जबकि वे सभी, न्यायिक सेवा में प्रवेश करने वाले व्यक्तियों के प्रशिक्षण के अनिवार्यता से सहमत थे, उनमें प्रशिक्षण की पद्धति और पढ़ाए जाने वाले विषयों के संबंध में मत भिन्नता थी।

1. ई० पी० थाम्पसन : विग्ज एण्ड हण्टरस् : 1975, पी० 1259, विधि आयोग को प्रस्तुत डा० सी० एस० आर० राव के नोट में उद्धृत।

"चुने जाने के अधिकार" की परिधि विस्तीर्णता, लोकहित मुकदमों, पत्र विषयक अधिकारिता, प्रक्रिया-विधि की अनिवार्यताओं का शिथिलीकरण, विधिक सहायता और लोक अदालतों ने न्यायिक कर्त्तव्यों और कृत्यों के क्षितिज को व्यापक बना दिया है। संघ और राज्य सरकारों ने, संविधान के भाग 4 के आदेशों को स्वीकार करते हुए, निर्धनों, पद दलितों और वंचित व्यक्तियों की दशा सुधारने की दृष्टि से अनेक विधान अधिनियमित किए हैं। श्रम विधियों ने विभिन्न प्रकार के मामले और विवाद उपस्थित किए हैं। सामाजिक-आर्थिक न्याय की संकल्पना को संविधान के ढांचे के अन्तर्गत कार्यान्वित करने का लक्ष्य रखने वाले न्यायपालिका के सदस्यों को, न्यायपालिका के समक्ष उपस्थित चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए पूरी तरह तैयार होना चाहिए और यह संस्थागत प्रशिक्षण द्वारा ही संभव है। ये सभी पहलू प्रशिक्षण के क्षेत्र के अन्तर्गत आने चाहिए। आयोग की यह राय है कि संयुक्त राज्य की ओमरोड कमेटी की सिफारिशें, न्यायपालिका में भरती हुए नए व्यक्तियों के प्रशिक्षण के लिए पर्याप्त नहीं होंगी। उस कमेटी ने, निम्नलिखित पांच मुख्य शाखाओं में निरन्तर विधिक शिक्षा देने के लिए वृत्तिक विधिक प्रास्थिति संस्थान स्थापित किए जाने की सिफारिश की थी :—

(एक) न्यायिक कर्तव्यों का पाठ्यक्रम,

(दो) पुनश्चर्या पाठ्यक्रम,

(तीन) नये विधानों का पाठ्यक्रम,

(चार) विशेषज्ञ पाठ्यक्रम, और

(पांच) अन्तः अनुशासनिक पाठ्यक्रम।

निःसंदेह, न्यायिक कर्तव्य के पाठ्यक्रम के अन्तर्गत निष्पक्ष और पूर्वाग्रह—रहित दृष्टिकोण, साक्ष्य का समीक्षात्मक मूल्यांकन, विधान के प्रयोजन और उद्देश्य और सांविधानिक लक्ष्यों की पूर्ति, जैसे विषय होंगे। यदि शीर्षकों का इस प्रकार विभाजन होता है तो निश्चित ही, ओमरोड समिति द्वारा उपदर्शित पांच मुख्य शाखाएं न्यायिक अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण का पर्याप्त क्षेत्र प्रदान करेंगी। पाठ्य—विवरण स्थूल रूप से उपदर्शित करते समय, तीन विभिन्न शाखाओं में सम्मिलित किए जाने वाले विषय विनिर्दिष्टतः वर्णित किए जाएंगे। इस प्रक्रम पर, इतना कहना पर्याप्त होगा कि प्रशिक्षण व्यापक स्वरूप का होना चाहिए जिससे न्यायिक सेवा में आने वाले नए व्यक्तियों को ऐसी समस्त अर्हताओं से सज्जित किया जा सके जो उन्हें आदर्श और उपयोगी न्यायाधीश बनाएंगी।

प्रशिक्षण पाठ्यक्रम की अवधि

4.4 इस बात का उत्तर देना आसान नहीं है कि प्रशिक्षण की अवधि कितनी होनी चाहिए ? न्यायिक सेवा में प्रवेश करने वाले विभिन्न प्रवर्गों के लिए कालावधि भिन्न-भिन्न हो सकती है। प्रशिक्षण की अपरिहार्यता न्यायिक सेवा में प्रवेश करने वाले उन व्यक्तियों की श्रेणी के लिए है जो नये विधि-स्नातक होंगे और जिनकी भरती प्रतियोगी परीक्षा के परिणाम के आधार पर की जाएगी। उन्हें विधि का उतना ही ज्ञान होगा जो उन्होंने विधि महाविद्यालयों में प्राप्त किया है। विद्यालयीन वातावरण और न्यायालयीन वातावरण में बहुत अन्तर होता है। निःसंदेह, विधि सभा एवं और केस मेथड सिस्टेम जैसे नवीन उपायों ने विधि महाविद्यालयों के विद्यार्थियों को न्यायालय प्रणाली की झलक पाने में कुछ सीमा तक मदद की है। तथापि इस परिधीय ज्ञान को, वास्तविक रूप से न्यायाधीश के रूप में तैनात किए जाने के लिए किसी भी तरह पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। किसी भी दशा में, विधि-महाविद्यालयों के पाठ्यक्रम में प्रक्रियात्मक विधियों को यद्यपि सम्मिलित किया गया है, किन्तु उसमें वकालत की कला, साक्ष्य अभिलेखन, निर्णय करने की प्रक्रिया और निर्णय लेखन सम्मिलित नहीं है। इसके अतिरिक्त, न्यायालय कक्ष के दिन प्रतिदिन के कार्य के लिए बार से व्यवहार करने, तुच्छ आक्षेपों को प्रभावी ढंग से निपटाने तथा स्थगन के उन्माद से निपटने आदि की कुशलता आवश्यक होती है। अतः, न्यायिक सेवा में प्रवेश करने वाले ऐसे नये विधि स्नातकों के लिए विस्तृत प्रशिक्षण नितान्त आवश्यक है। उनके मामले में, संस्थागत प्रशिक्षण की अवधि एक वर्ष की होनी चाहिए। हम भारत के मुख्य न्यायमूर्ति द्वारा भेजी गई रूपरेखा में दिए गये इस सुझाव को कि जिला न्यायाधीशों और अन्य न्यायधीशों के रूप में सीधे भरती किए गए नये व्यक्तियों के लिए आधारिक पाठ्यक्रम की अवधि 12 सप्ताह से 18 सप्ताह तक की होनी चाहिए, पूरी तरह अपर्याप्त समझते हैं। लगभग 24 वर्ष की आयु समूह के नये विधि स्नातकों को, मामलों और विवादों से सम्बन्धित प्रत्यक्षतः और परोक्षतः सम्बन्धित विषयों का शिक्षण देकर विधोचित वातावरण में गहन प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए और उसे न केवल प्रक्रियागत प्रक्रमों से अवगत कराना चाहिए वरन् उस विषय पर बुद्धिमता, दूरदर्शिता, व्यापक उदार दृष्टिकोण का प्रयोग करने तथा सांविधानिक संस्कृति और न्याय प्रणाली के लक्ष्यों को ध्यान में रखने पर बल दिया जाना चाहिए। ऐसा व्यापक प्रशिक्षण को 12 से 18 सप्ताह के प्रशिक्षण में समाहित नहीं किया जा सकता। अतः, आयोग का यह दृढ़ मत है कि भारतीय न्यायिक सेवा में, प्रतियोगी परीक्षा के परिणाम के आधार पर नये विधि स्नातकों में से भरती किए

अध्याय 4

प्रशिक्षण की स्कीम

4.1 एक व्यापक प्रशिक्षण स्कीम में संस्थागत बाह्याकृति, प्रशिक्षण का क्षेत्र और विषय-वस्तु, प्रशिक्षण की अव पाठ्यचर्या और संकाय का समावेश होना चाहिए। अब प्रत्येक अंग के संबंध में पृथक्-पृथक् रूप से विचार किया जाएग

संस्थागत बाह्याकृति

4.2 न्यायिक अधिकारियों को प्रशिक्षण देने के लिए वर्तमान में केवल दो मान्यता-प्राप्त संस्थान कार्य कर रहे वे है :—

(1) आन्ध्र प्रदेश राज्य न्यायपालिका प्रशासन अकादमी, सिकन्दराबाद ; और

(2) उत्तर-पूर्वीय न्यायिक अधिकारी प्रशिक्षण संस्थान, गुवाहाटी।

न्यायिक अधिकारियों के लिए 1972 में महाराष्ट्र सरकार द्वारा नागपुर में एक प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किया था, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि उसे 1978 में मुख्यतः इस आधार पर बन्द कर दिया गया कि संस्थान को चलाने व्यय, उससे होने वाले फायदों से अधिक था। गुजरात सरकार ने गांधी श्रम संस्थान के नाम से, श्रम न्यायपालिक लिए अहमदाबाद में एक प्रशिक्षण संस्थान स्थापित किया है। इसकी स्थापना, गुजरात श्रम विधि समीक्षा समिति सन् 1974 में की गई सिफारिश के अनुसरण में की गई थी[1]। भारत के मुख्य न्यायमूर्ति ने, 31 अगस्त, 1 सितम्बर, 19 में नई दिल्ली में आयोजित मुख्य न्यायमूर्तियों, मुख्य मंत्रियों और विधि मंत्रियों के संयुक्त सम्मेलन में दिए गए सुझाव स्कीम की अपनी रूपरेखा में अंगीकार किया है, जिसमें न्यायिक अधिकारियों को इस दृष्टि से कि उनकी गुणवत्ता दक्षता में अभिवृद्धि हो सके, प्रशिक्षण देने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा एक अकादमी स्थापित करने की सिफारिश गई थी। भारतीय विधि संस्थान द्वारा अपनी रजत जयंती मनाने के लिए, भारतीय विधि प्रणाली पर फरवरी, 198 आयोजित सम्मेलन में, न्यायिक सुधार समिति ने यह राय व्यक्त की कि "यह तय पाया गया कि न्यायाधीशों के एक प्रशिक्षण महाविद्यालय या एक महाविद्यालय और अनुसंधान संस्थान स्थापित किया जाए और यह कि न्यायिक अ कारियों को विधि में होने वाले परिवर्तनों से अवगत बने रहने और उनमें निर्णय करने की कुशलता पैदा करने के लि पुनश्चर्या पाठ्यचर्या प्रारम्भ की जानी चाहिए। न्यायाधीशों के लिए प्रशिक्षण केन्द्र या महाविद्यालय के महत्व और ही निरन्तर विधिक शिक्षा के महत्व पर बल दिया गया था।"[1] विधि और न्याय मंत्रालय के न्याय विभाग के अधिकारि द्वारा तैयार की गई प्रारूप स्कीम में, न्यायिक अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए देश के परिक्षेत्रों में क्षेत्रीय संस्थान स्थापित करने की कल्पना की गई है। विभिन्न राज्यों में, न्यायिक सेवा में प्रवेश करने व्यक्तियों को उन न्यायाधीशों के साथ, जो कुछ समय तक सेवा में रह चुके हैं, संबद्ध करके व्यावहारिक प्रशिक्षण देने पद्धति प्रचालित है। न्यायिक अधिकारियों को प्रशिक्षण देने की वर्तमान प्रणाली, पद्धति और सुविधा पूर्णतः अपर्याप्त और उसने न्यायाधीशों को न्याय करने की कला में निपुणता प्राप्त करने में किसी भी प्रकार से मदद नहीं की है। भारत न्यायिक सेवा में प्रवेश करने वाले नए व्यक्तियों को गहन प्रशिक्षण देने के लिए, देश में उपयुक्त स्थान पर केन्द्रीय अका स्थापित करना नितान्त आवश्यक है। उन सभी व्यक्तियों को जो प्रतियोगी परीक्षा में अर्हित होते हैं और जो भारत न्यायिक सेवा में भरती किए जाते है और राज्यों को आबंटित किए जाते हैं, इस अकादमी में प्रशिक्षण लेना होगा। अका उपयुक्तानुसार किसी केन्द्रीय स्थान में स्थित की जा सकती है। मुख्य न्यायमूर्ति ने अकादमी की स्थापना के लिए बंग की अनुशंसा की है जिसे, यदि वह अन्यथा उपयुक्त पाया जाता है, स्वीकार किया जा सकता है।

प्रशिक्षण का क्षेत्र

4.3 अब हमारा ध्यान इस ओर जाना चाहिए कि प्रशिक्षण का क्षेत्र क्या होना चाहिए ? हाल ही के वर्षों न्यायपालिका से की जाने वाली आशाओं में कई गुनी वृद्धि हो गई है।

1. श्रम विधि समीक्षा समिति, गुजरात की रिपोर्ट, 1974, अध्याय 4, पृ० 19।

इस कार्यशाला की अध्यक्षता, उस राज्य पर अधिकारिता रखने वाले उच्च न्यायालय के एक न्यायाधीश द्वारा की गई थी। आश्चर्यजनक रूप से उसमें न तो जिला न्यायाधीश ने और न ही जिला न्यायाधीश के अधीनस्थ न्यायाधीशों ने भाग लिया। सही स्थान पर जांच करने पर जो जानकारी दी गई वह यह थी कि उच्च न्यायालय ऐसी कार्यशालाओं और सेमीनारों में न्यायाधीश द्वारा भाग लेने के पक्ष में नहीं है। यह क्लोज डोर नान-एक्सपोजर दृष्टिकोण विधि आयोग की समझ से परे था। अतः, भारतीय न्यायिक सेवा में प्रोन्नत व्यक्तियों के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण के अतिरिक्त, प्रत्येक न्यायाधीश के लिए 5 वर्षों के अन्तराल में नियमित पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों की व्यवस्था होनी चाहिए। विधि के विकास की आधुनिकतम प्रवृत्तियों, अन्तः अनुशासनिक संबंधों और न्याय प्रणाली के विस्तारशील लक्ष्यों पर परिचर्चा करने के लिए कार्यशालाएं, सेमीनार और परिचर्चाएं आयोजित की जा सकती है। उच्च न्यायालय का यह बाध्यात्मक कर्तव्य होना चाहिए कि वह जिला न्यायाधीशों के लिए, उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों, विधि संकाय के अध्यापकों और प्रमुख अधिवक्ताओं की सक्रिय सहभागिता के साथ ऐसी कार्यशालाएं, सेमीनार और परिचर्चाएं आयोजित करने की व्यवस्था करे। न्यायिक सेवा के लिए व्यापक प्रशिक्षण की कल्पना इसी रूप में की जाती है।

गए व्यक्तियों के लिए संस्थागत परीक्षण एक वर्ष की कालावधि के लिए होना चाहिए। पाठ्यचर्या पर विचार विम करते समय, शिक्षण के ब्यौरेवार शीर्षों पर प्रकाश डाला जाएगा ।

एक वर्ष की कालावधि के संस्थागत प्रशिक्षण मात्र से प्रशिक्षार्थी की क्षमताओं में उस सीमा तक विकास नहीं हो कि वह मामलों का न्याय-निर्णयन करने की शक्ति प्रदत्त किए जाने के योग्य हो सके । तत्पश्चात् अतिरिक्त व्यावहारि प्रशिक्षण अनिवार्य है । संस्थान में न्यायसभाओं के माध्यम से न्यायालय के वातावरण, मामलों का विचारण और वकालत कला से समुचित रूप से अवगत नहीं कराया जा सकता । अतः, एक वर्ष का प्रशिक्षण समाप्त होने के पश्चात, भारत न्यायिक सेवा में नये भरती किए गए व्यक्ति को, अनुप्रयुक्त विधि समाविष्ट करने वाले व्यावहारिक स्वरूप का अतिरि प्रशिक्षण, पहले उसे मुंसिफ/सिविल न्यायाधीश/प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय में तीन मास की कालावधि के लि अधिसंख्य अधिकारी (Super-numerary Officer) के रूप में पदस्थ करके दिया जा सकता है । उसके पश्चा उसे उसी हैसियत में और उसी कालावधि के लिए सिविल न्यायाधीश, वरिष्ठ प्रभाग या असीमित धनीय अधिकारिता र वाले न्यायाधीश के न्यायालय में तैनात किया जाना चाहिए । तदनन्तर, उसे छह सप्ताह तक महानगर मजिस्ट्रेट के साथ अ अगले छह सप्ताह तक लघुवाद न्यायालय के न्यायाधीश के साथ बैठने के लिए तैनात किया जाना चाहिए । आगामी तीन म में, जिला मुख्यालय में जिला तथा सेशन न्यायाधीश के साथ संबद्ध किया जाना चाहिए।

विभिन्न न्यायालयों से उसके संबद्ध रहने की कालावधि के दौरान, उसे संबंधित न्यायाधीश के साथ बैठने के बाध्यात कर्तव्य का पालन करना चाहिए । सम्पूर्ण कार्य दिवस में, उसे न्यायालय के प्रधान न्यायाधीश द्वारा विचारण किए जा समस्त मामलों को सुनना चाहिए। यदि साक्ष्य का अभिलेखन किया जा रहा हो, तो उसे अपने स्वयं के फायदे के लिए सा का अभिलेखन करना चाहिए। उसे पूरी बहस सुननी चाहिए । उसे उन सभी मामलों के कागज-पत्र पढ़ना चाहिए जो उ समक्ष न्यायालय में सुने जा रहे हैं। बहस सुनने के पश्चात् विचारण के समाप्त होने पर, उसे अपने स्वयं का निर्णय तैयार क चाहिए । यह वह विस्तृत प्रशिक्षण है जो उसे ऐसे प्रत्येक न्यायालय में दिया जाना चाहिए जिनसे उसे एक वर्ष की कालाव के लिए संबद्ध किया जाता है। उसके द्वारा लिखे गए सभी निर्णय और आदेश जिला न्यायाधीश को प्रस्तुत किए जा और उसे, उस संबंधित प्रधान न्यायाधीश की, जिसके साथ अधिसंख्य अधिकारी बैठ रहा था, अभ्युक्तियां मंगाने के पश् उनका विश्लेषणात्मक परीक्षण करना चाहिए और अपनी टिप्पणियां देनी चाहिए । उसके पश्चात् संबंधित व्यक्ति को वैयक्ति चर्चा के लिए बुलाया जाना चाहिए और उसके कार्य के गुण-दोष उसके ध्यान में लाए जाने चाहिए । तत्पश्चात्, जि न्यायाधीश को एक व्यापक रिपोर्ट उच्च न्यायालय को भेजना चाहिए जो कि अपनी इन अभ्युक्तियों के साथ संबंधित व्यक्ति ने उसे उपलब्ध कराई गई प्रशिक्षण सुविधाओं का यथोचित उपयोग किया है, वह रिपोर्ट राष्ट्रीय न्यायिक आयोग को भेजेगा । उसे दो वर्ष के प्रशिक्षण की कालावधि के पश्चात् परीक्षा भी उत्तीर्ण करना चाहिए । उसके पश उसकी मूल पद स्थापना की जानी चाहिए । इस प्रकार, विधि महाविद्यालय से निकले अपरिपक्व विधि स्नातक को, दो की कालावधि का संस्थागत और व्यावहारिक दोनों प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त होगा जो, यह आशा की जाती है, उसे न्या सेवा के निम्नतम स्तर पर मामलों और विवादों का विनिश्चय करने का कार्य प्रारम्भ करने के लिए यथोचित रूप से स बनाएगा । इस गहन प्रशिक्षण से, न्यायिक सेवा प्रवेश करने के पूर्व बार में विधि व्यवसाय न करने की कमी की यथोचित से पूर्ति हो जाएगी । विधि आयोग की यह राय है कि दो वर्ष का गहन प्रशिक्षण, तीन वर्ष के विधि व्यवसाय से, जि बहुधा किसी व्यक्ति को सुसज्जित करने में कोई मदद नहीं मिलती, होने वाले लाभों से, यदि कोई हों, अधिक उपयोगी हो

अगला संवर्ग, जिसके लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था आवश्यक रूप से की जानी चाहिए, राज्य न्यायिक सेवा से भार न्यायिक सेवा में प्रोन्नत किए गए व्यक्तियों का है । उन्हें 12 सप्ताह का संस्थागत प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए। उनके किसी व्यावहारिक प्रशिक्षण की व्यवस्था करना अनावश्यक है क्योंकि यह माना जाता है कि प्रोन्नत किए गए व्यक्तियों भारतीय न्यायिक सेवा में प्रोन्नत किए जाने के पूर्व, सात वर्ष या उससे अधिक की सक्रिय न्यायिक सेवा में रहना होगा। लिए, इसमें इसके पूर्व उपदर्शित सेवाकालीन प्रशिक्षण पर्याप्त होगा।

4.8 विधि आयोग के लिए यह खेद का विषय है कि जबकि प्रशासन की सभी अन्य शाखाओं में नियमित अन्तर पर कार्यशालाएं, सेमीनार और परिचर्चाएं आयोजित की जाती हैं, न्यायाधीशों को शायद ही कभी इनका अवसर मिल है । वास्तव में, विधि आयोग के पास यह जानकारी है, जिसे वह विश्वसनीय मानता है, कि उच्च न्यायालय जिला न्याया और उसके अधीनस्थ न्यायाधीशों को कार्यशालाओं और सेमीनारों में भाग लेने की अनुमति देने के लिए कुछ सीमा अनिच्छुक रहते हैं। एक घटना आयोग की जानकारी में आई है जो यहां उल्लेखनीय है । एक उत्तरी राज्य में विधिक सहायता से विस्तार के लिए स्थानीय शासन द्वारा स्थापित एक निकाय ने, जिसे विधिक सहायता सेवा का विस्तार करने का कर्तव्य गया था, स्थानीय विधिक सहायता निकाय का गठन करने के उद्देश्य से जिला स्तर पर एक कार्यशाला आयोजित की

दाण्डिक

(1) अपराध के शिकार व्यक्तियों की समस्याएं;

(2) दण्डादेश देने की प्रक्रिया ;

(3) सामाजिक रूप से लाभकारी विधानों, जैसे न्यूनतम मजदूरी अधिनियम; बंधित श्रम उत्पादन अधिनियम, आदि के अतिक्रमण के संबंध में दृष्टिकोण;

(4) दण्ड के सिद्धांत ।

प्रक्रिया

(1) सिविल और दाण्डिक दोनों प्रक्रिया विधियों के महत्वपूर्ण उपबन्ध ;

(2) निर्णय लेखन की कला ।

पाठ्य विवरण

5. किसी प्रशिक्षण स्कीम के कार्यसाधक, उपयोगी और परिणाममूलक होने के लिए यह आवश्यक है कि उसका पाठ् विवरण व्यापक हो । यह बात स्पष्ट रूप से स्वीकार की जानी चाहिए कि गैर शिक्षा शास्त्रियों से गठित किसी निकाय द्व व्यापक पाठ्य विवरण तैयार किया जाना एक चुनौती पूर्ण कार्य है । विधि आयोग ने, प्रशिक्षण के लिए विहित किए ज वाले विषयों से स्वयं को अवगत कराने की दृष्टि से, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति, उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीशों अ कुछ विधि शिक्षा शास्त्रियों से चर्चा की । आयोग ने, भारतीय विधिज्ञ परिषद् द्वारा विहित पांच-वर्षीय-विधि पाठ्यक्रम बारीकी से अवलोकन किया । न्यायाधीश पद को समुचित रूप से "बहु-शास्त्रीय पद" कहा जा सकता है । अपने पद के यो न्यायाधीश होने के लिए, पदधारी को समाज शास्त्र, अर्थ शास्त्र, मानव विज्ञान, सांविधानिक संस्कृति, निष्पक्ष दृष्टिकोण, कक्षीक और साक्षियों को समझने के मनोविज्ञान, निर्णय करने की प्रक्रिया, आधुनिक प्रबन्ध तकनीकों, और सबसे अधिक, ग्राम समाज के समाजीकरण, गरीबी की समस्याओं और समाज के उपेक्षित वर्ग, जैसे अनुसूचित जातियों और जनजातियों सदस्यों, उत्पीड़ित व्यक्तियों के बारे में समुचित जानकारी होनी चाहिए । इन सभी विषयों को समाविष्ट करते हुए, व्यापक पाठ्य विवरण तैयार करना एक कठिन कार्य है । भारत के मुख्य न्यायाधीश द्वारा भेजी गई रूपरेखा को दृष्टिगत र हुए, आयोग को इस संबंध में कार्यवाही करने से कुछ हद तक राहत मिल गई है । इस रूपरेखा में व्यापक पाठ्य विव समाविष्ट किया गया है । यह रूपरेखा त्वरित संदर्भ हेतु, उपाबन्ध 2 के रूप में इस रिपोर्ट के साथ संलग्न है । राष्ट् न्यायिक सेवा आयोग के सहयोग से प्रशिक्षण देने के लिए स्थापित किए जाने वाली अकादमी के प्रभारी प्राधिकारी, अका में प्रशिक्षण के लिए व्यापक पाठ्य विवरण तैयार करेंगे । सर्वांगीण न होते हुए भी, वे विषय, जिन्हें प्राथमिकता दी जानी चाहि संक्षेपतः निम्नानुसार वर्णित किए जा सकते है :—

विधि का समाज विज्ञान

(1) न्याय प्रणाली के लक्ष्य ;

(2) समाज के विकास में न्यायपालिका की भूमिका ;

(3) न्याय की संकल्पना ;

(4) भारत के संविधान में उपवर्णित लक्ष्य;

(5) विवादों के निराकरण की पद्धति के रूप में सुलह न कि मुकाबला ;

(6) मामलों और विवादों के शीघ्र निपटारे की पद्धति ;

(7) गरीबी की समस्याएं;

(8) समाज के कमजोर वर्गों के पक्ष में राज्य की सकारात्मक कार्रवाई या उनके पक्ष में सकारात्मक विभेद ;

(9) भारत के उच्चतम न्यायालय के हाल ही के निर्णय जिनमें वह दिशा उपदर्शित की गई हो जिस ओर वि गतिशील हो रही है ।

न्यायालय प्रबन्ध की आधुनिक तकनीक

(1) कार्यालय का आन्तरिक प्रबन्ध जिसके अन्तर्गत कम्प्यूटरीकृत प्रबन्ध है ;

(2) सहबद्ध शाखाओं, जैसे बार, पुलिस, जेल आदि से आन्तरिक संबंध;

(3) अभिलेखों का वर्गीकरण;

(4) पुराने अभिलेखों का परिरक्षण, जिसके अन्तर्गत उनकी माइक्रो फिल्म तैयार करना, आदि है ।

अध्याय 7

अकादमी का गठन और आनुषंगिक प्रबंधकीय पहलू

7.1 इसमें अनुशंसित अकादमी की स्थापना भारत सरकार द्वारा की जानी चाहिए । अकादमी का मुख्य कार्यपालक अधिकारी निदेशक होगा जो अकादमी के प्रशासन का समग्र प्रभारी होगा । न्यायिक सेवा के एक या अन्य पहलुओं के संबंध में कार्यवाही करने वाले निकायों की बहुलता को रोकने के लिए, राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग को अकादमी के सलाहकार निकाय के रूप में कार्य करना चाहिए । राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग को अकादमी के सलाहकार निकाय की हैसियत से स्थूल नीति विषयक ढांचा निर्धारित करना चाहिए । अध्यापक वर्ग के चयन का कार्य, राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग द्वारा, अकादमी के निदेशक के परामर्श से, स्थापित की जाने वाली विशेषज्ञों की समिति को सौंपा जाना चाहिए । निदेशक, स्वयं को और अध्यापक वर्ग के चार वरिष्ठ सदस्यों को सम्मिलित करते हुए, एक समिति स्थापित करेगा जो अकादमी के आन्तरिक प्रशासन की प्रभारी होगी । अकादमी की आवश्यकताओं के अनुसार, प्रशासनिक कर्मचारिवृन्द का चयन और नियुक्ति, इस समिति द्वारा की जाएगी ।

7.2 विधि आयोग द्वारा, न्यायिक सुधारों के संबंध में विहित किए गए विभिन्न निबन्धनों के संबंध में पृथक्-पृथक् रिपोर्ट प्रस्तुत की जा रही हैं। तथापि, वे एक श्रृंखला के रूप में हैं और उनकी कोई भी कड़ी तोड़ी नहीं जा सकती। विधि आयोग ने अपनी पूर्ववर्ती [1]रिपोर्ट में, भारतीय न्यायिक सेवा आयोग के संबंध में उल्लेख किया है । उसमें परिकल्पित निकाय के प्रभार में विधिक स्वरूप के कर्तव्य रखे जाने हैं। एक ऐसा कर्तव्य, इस रिपोर्ट में यथा अनुशंसित अकादमी के लिए सलाहकार निकाय होना है । उसका गठन, संरचना और कृत्य, शीघ्र ही प्रस्तुत की जाने वाली एक पृथक् रिपोर्ट में वर्णित किए जाएंगे । तदनुसार, यह सुझाव दिया जाता है कि राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग, अकादमी का सलाहकार निकाय होगा जिसका मुख्य कार्यपालक अधिकारी निदेशक होगा।

---

1. भारत का विधि आयोग : एक सौ सोलहवीं रिपोर्ट।

अध्याय 6

अध्यापक वर्ग

6. प्रशिक्षण पाठ्यक्रम के लिए सक्षम अध्यापक वर्ग का चयन अत्यन्त महत्वपूर्ण है । साधारणतया, समाज का प्रत्येक सदस्य प्रत्यक्षतः या परोक्षतः न्यायपालिक के संपर्क में आता है । न्यायपालिका से समाज की आशाएं बहुत अधिक हैं । एक सत्यनिष्ठ, बुद्धिमान और ईमानदार न्यायाधीश समाज में इतना विश्वास उत्पन्न करता है कि ऐसे न्यायाधीश पैदा करने के प्रश्न पर खर्च लाभ संलक्षण (Cost benefit syndrome) के दृष्टिकोण से विचार नहीं करना चाहिए । ऐसे न्यायाधीशों को प्रशिक्षित करने और पैदा करने के लिए अकादमी को अध्यापक वर्ग के उच्च योग्यताप्राप्त व्यक्तियों को एकत्रित करना होगा । यहां स्थूलतः यह उपदर्शित किया जा सकता है कि वे प्रख्यात विधि शिक्षा शास्त्रियों, उच्च न्यायालय और उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों, बार के वरिष्ठ और उत्कृष्ठ सदस्यों में से और यहां तक कि समाज सेवा करने वाले प्रमुख नागरिकों में से, भले ही उन्हें विधि का औपचारिक ज्ञान न हो, लिए जा सकते हैं। अंतिम प्रवर्ग समाज के न्यायाधीश का और इस बात का द्योतन करेगा कि उससे समाज को क्या आशाएं हैं। अकादमी के प्रभारी प्राधिकारी और राष्ट्रीय न्यायिक सेवा आयोग, अध्यापक वर्ग के सदस्यों के लिए अपेक्षित योग्यताएं निर्धारित करेंगे और उनका चयन करेंगे।

उपाबन्ध 1

सारणी

विभिन्न राज्यों में न्यायिक अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण सुविधाएं

अनुक्रम	राज्य	अधिकारी जिन्हें प्रशिक्षण दिया जाना है	प्रशिक्षण का स्वरूप		प्रशिक्षण की अवधि	भावी योजनाएं	अन्य अभ्युक्तियां
			प्रशिक्षण संस्थान	अन्य फोरम			
1	2	3	4	5	6	7	8
1.	आन्ध्र प्रदेश	जिला मुंसिफ	आन्ध्र प्रदेश राज्य न्यायिक सेवा प्रशासन अकादमी, सिकन्दराबाद	—	—	विचाराधीन सभी अधिकारियों के लिए पुनश्चर्या पाठ्यक्रम	—
2.	असम, मेघालय, मणिपुर और नागालैण्ड	1. मुंसिफ और न्यायिक मजिस्ट्रेट 2. अपर जिला और सेशन न्यायाधीश	उत्तर-पूर्वीय न्यायिक अधिकारी प्रशिक्षण संस्थान, गुवाहाटी	—	1. 4 मास 2. 1 मास	—	—
3.	बिहार	—	—	—	—	—	कोई प्रशिक्षण संस्थान नहीं, न ही पुनश्चर्या पाठ्यक्रमों के लिए कोई व्यवस्था।
4.	दिल्ली	न्यायिक सेवा अधिकारी	—	सिविल न्यायाधीश और सेशन न्यायाधीश के साथ सहयुक्त किए जाते हैं।	4 सप्ताह	प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना करना	—
5.	गुजरात	सिविल न्यायाधीश (कनिष्ठ प्रभाग)	न्यायालयों में	संबंधित अभ्यर्थियों के बारे में अनुभव पर निर्भर करते हुए।	—	—	केन्द्रीय स्तर पर प्रशिक्षण संस्थान के संबंध में कोई आपत्ति नहीं।
6.	जम्मू और कश्मीर	—	—	—	—	—	भर्ती किए गए नये व्यक्तियों के लिए प्रशिक्षण पाठ्यक्रम और वरिष्ठ न्यायिक अधिकारियों के लिए पुनश्चर्या पाठ्यक्रम 1972 में प्रारंभ किए गए थे, किन्तु वे दीर्घकाल से बंद है।
7.	कर्नाटक	1980 बैंच के मुंसिफ	उच्च न्यायालय में	प्रशिक्षण संस्थान स्थापित करने पर सक्रिय रूप से विचार किया जा रहा है।	—	—	—

अध्याय 8

क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्र

8. उन व्यक्तियों के लिए, जो राज्य न्यायिक सेवा में प्रवेश करेंगे, प्रशिक्षण देने की आवश्यकता का और अधिक समय तक अवप्राक्कलन नहीं किया जा सकता । भारतीय न्यायिक सेवा के सदस्यों को जिन कारणों से प्रशिक्षण देना आवश्यक है वे राज्य न्यायिक सेवा में प्रवेश करने वाले व्यक्तियों को प्रशिक्षण दिए जाने के संबंध में यथावश्यक परिवर्तन सहित लागू होंगे । भरती किए गए ऐसे व्यक्तियों के लिए संस्थागत प्रशिक्षण की अवधि तीन वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए । यह इस धारणा पर आधारित है कि राज्यों द्वारा राज्य न्यायिक सेवा में प्रवेश के लिए बार में न्यूनतम विधि व्यवसाय की अर्हता को बनाए रखा जाएगा । तथापि, प्रत्येक राज्य अपने स्वयं का न्यायिक प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित करने में समर्थ नहीं हो सकता और न ही उन्हें वर्षानुवर्ष उसकी न्यायिक सेवा में प्रवेश करने वाले कुछ व्यक्तियों के लिए ऐसे प्रशिक्षण केन्द्र की सुविधा की आवश्यकता ही हो सकती है । अतः, उचित यही होगा कि क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की जाए, जो पास-पास लगे हुए तीन से चार राज्यों की आवश्यकता की पूर्ति करेंगे । उदाहरण स्वरूप, आन्ध्र प्रदेश में सिकन्दराबाद में स्थित प्रशिक्षण केन्द्र को तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक की आवश्यकताओं की पूर्ति करनी चाहिए । एक केन्द्र नागपुर में स्थापित किया जा सकता है । जैसा कि पूर्व में बताया गया है, वहां पहले से ही एक केन्द्र था किन्तु उसे बन्द कर दिया गया है। उसे पुनः प्रारम्भ करना चाहिए । नागपुर स्थित प्रशिक्षण केन्द्र को महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, राजस्थान और गुजरात की आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहिए । तीसरा प्रशिक्षण केन्द्र एलाहाबाद में स्थापित किया जाना चाहिए और उसे जम्मू और कश्मीर, पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और बिहार की आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहिए । गुवाहाटी स्थित प्रशिक्षण केन्द्र को, जो पहले से ही कार्य कर रहा है, पश्चिमी बंगाल, सिक्किम और उड़ीसा की आवश्यकताओं की भी पूर्ति करनी चाहिए । विभिन्न केन्द्रों से लाभ उठाने वाले राज्यों को, केन्द्र को चलाने के खर्च और न्यायों के प्रति समानुपात में अभिदान करना चाहिए । प्रशिक्षण के लिए चुने जाने वाले विषयों का समुचित रूप से चयन, उन विषयों में से, जो ऊपर उल्लिखित किए गए हैं, इस आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए कि मूल विषयों में न्याय प्रणाली के लक्ष्य, निर्णय लेखन की कला, न्यायालय प्रबन्ध होने चाहिए ।

तद्नुसार विधि आयोग एक अकादमी, क्षेत्रीय प्रशिक्षण केन्द्रों के स्थापित किए जाने और सेवा-पूर्व और सेवा कालीन प्रशिक्षण के लिए और सम्बद्ध विषयों के लिए पाठ्यक्रम तैयार किए जाने की सिफारिश करता है।

(डी० ए० देसाई)
अध्यक्ष

(एस० सी० घोष)
सदस्य

(वी० एस० रमादेवी)
सदस्य–सचिव

नई दिल्ली,
तारीख 28 नवम्बर, 1986.

1	2	3	4	5	6	7	8
16.	गांधी श्रम संस्थान ग्रहमदाबाद	श्रम न्यायपालिका	—	—	—	—	यदि संस्थान में गुंजाइश हो तो क्या उसका उपयोग अन्य न्यायिक अधिकारियों को प्रशिक्षण देने के लिए किया जा सकता है
17.	इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ पब्लिक एड-मिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली		—	—	अल्प अवधि	—	प्रशासनिक विधि और दांडिक न्याय प्रशासन में पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करती है।
18.	इंस्टीट्यूट आफ क्रिमिनालाजी एण्ड फोरन्सिक साइंसेस, नई दिल्ली ।		—	—	अल्प अवधि	—	अपराध और न्याय, अपराध विज्ञान और न्यायालयिक विज्ञान में पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करती है।

1	2	3	4	5	6	7	8
8.	केरल	1. मुंसिफ और द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट 2. जिला न्यायाधीश और मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट	1. उच्च न्यायालय में, 2. इंडियन इंस्टीट्यूट आफ पब्लिक एंड मिनिस्ट्रेशन आफ क्रिमिनालाजी एण्ड फोरेंसिक साइंसेज		6 मास	—	—
9.	मध्य प्रदेश	सिविल न्यायाधीश	जिला न्यायधीशों के अधीन		6 मास	—	—
10.	महाराष्ट्र	सिविल न्यायाधीश एवं मजिस्ट्रेट	जिला न्यायाधीशों के अधीन	—	6 मास	—	न्यायिक अधिका प्रशिक्षण संस्था नागपुर 1972 प्रारंभ किया, ग किन्तु 1978 बंद कर दि गया क्योंकि व्य प्रोदभूत फायदों अनुरूप नहीं थे
11.	उड़ीसा	1. मुंसिफ 2. निम्न और उच्च न्यायिक सेवा के अधिकारी	पुनश्चर्या पाठ्यक्रम में सेवाकालीन प्रशिक्षण	—	1. 2 वर्ष का प्रावधान जो उच्च न्यायालय द्वारा कम किया जा सकता है	—	विस्तृत पुनश्च पाठ्यक्रमों के स प्रशिक्षण क क्रमों के पक्ष
12.	पंजाब और हरियाणा 2. हिमाचल प्रदेश	न्यायिक अधिकारी	इंस्टीट्यूट आफ क्रिमिनालाजी और फोरेंसिक साइंसेज में प्रशिक्षण पाठ्यक्रम	—		हिमाचल प्रदेश द्वारा अपने अधिकारियों को हिमाचल प्रदेश इंस्टीट्यूट आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन में प्रशिक्षित करने का प्रस्ताव है	—
13.	तमिलनाडु	1. द्वितीय वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट 2. प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट 3. राज्य न्यायिक सेवा अधिकारी	1. राज्य सरकार के विभाग 2. इंस्टीट्यूट आफ क्रिमिनालाजी एण्ड फोरेंसिक साइंसेज 3. (1 और 2)		1. 39 सप्ताह 2. 3 सप्ताह	—	न्यायिक अ कारियों का के स्तर पर प्रशि आवश्यक न
14.	उत्तर प्रदेश	न्यायिक सेवा अधिकारी	प्रशासनिक संस्थान, नैनीताल	—	6–8 सप्ताह	—	वर्तमान में कोई पु पाठ्यक्रम सं नहीं किया जा
15.	पश्चिमी बंगाल	कनिष्ठ न्यायिक अधिकारी	वरिष्ठ न्यायिक अधिकारियों के साथ न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए अन्य संस्थाएं	—	अल्प अवधि	—	—

9. राज्यों के दो विधि मंत्री, जो भारत सरकार द्वारा, परिदर्शक के परामर्श से नाम निर्दिष्ट किए जाएंगे . सदस्य 2
10. भारत सरकार का विधि सचिव . . . . सदस्य 1
11. भारत का महान्यायवादी . . . . सदस्य 1
12. निदेशक, भारतीय विधि संस्थान . . . . सदस्य 1
13. निदेशक, नेशनल लॉ स्कूल ऑफ इंडिया . . . . सदस्य 1
14. तीन विधि-शिक्षावेत्ता, जो अध्यक्ष द्वारा परिदर्शक के परामर्श से नाम निर्दिष्ट किए जाएंगे . . सदस्य 3
15. निदेशक . . . . सदस्य 1

कुल–20

पांच––वित्त

राष्ट्रीय अकादमी का वित्त पोषण भारत सरकार द्वारा किया जाएगा किन्तु न्यायिक अधिकारियों के निवास और भोजन का खर्च संबंधित राज्यों द्वारा वहन किया जाएगा और भारत सरकार, यदि संभव हुआ, परस्पर स्वीकार्य ठहराव कर सकेगी जिसके द्वारा राज्य सरकारों को राष्ट्रीय अकादमी को चलाने के खर्च का भाग वहन करने के लिए राजी किया जा सकेगा क्योंकि राज्यों के न्यायिक अधिकारियों को अकादमी से लाभ होगा।

छह––अध्यापक वर्ग

राष्ट्रीय अकादमी में मोटे तौर पर निम्नलिखित स्टाफ होगा :––

1. निदेशक, जो उच्च न्यायालय का सेवा निवृत्त न्यायाधीश, जिसे पदावधि–आधार (टेन्योर बेसिस) पर लिया जा सकता है, या अध्यक्ष द्वारा, परिदर्शक के परामर्श से नाम निर्दिष्ट किया गया वरिष्ठ न्यायिक अधिकारी हो सकता है।
2. अपर निदेशक, जो विधि शिक्षावेत्ता होगा, जो अध्यक्ष द्वारा परिदर्शक के परामर्श से नाम निर्दिष्ट किया जाएगा।
3. अध्यापक वर्ग के पांच सदस्य, जो शासी निकाय द्वारा नियुक्त चयन समिति द्वारा चुने जाएंगे।
4. प्रशासनिक अधिकारी, जो शासी निकाय द्वारा नियुक्त किया जाएगा तथा सहायक कर्मचारी।

स्टाफ के बारे में प्रस्ताव व्यापक या पूर्ण नहीं हैं और जैसे-जैसे अकादमी का कार्य बढ़ता है अतिरिक्त स्टॉफ की आवश्यकता हो सकती है।

सात––विषय-वस्तु और अवधि

पाठ्यक्रम तीन प्रकार के होंगे :––

(क) नए भरती हुए व्यक्तियों के लिए आधारिक पाठ्यक्रम;

(ख) सेवा कालीन पुनश्चर्या पाठ्यक्रम;

(ख) अपील न्यायाधीशों के लिए सेमीनार और परिचर्चाएं।

अवधि

पाठ्यक्रम (क)–सीधे भर्ती किए गए जिला न्यायाधीशों और अन्य न्यायाधीशों के लिए जिला न्यायाधीशों के लिए 12 सप्ताह।

अन्य न्यायाधीशों के लिए 18 सप्ताह।

पाठ्यक्रम (ख)–10 सप्ताह

पाठ्यक्रम (ग)–3––4 सप्ताह

तीन प्रकार के पाठ्यक्रमों के लिए विषय-वस्तु (यथा उपयुक्त रूप से स्वीकार की जाए)

क. न्यायालय प्रबन्ध

क.1 डाकेट प्रबन्ध (बकाया)

क.2 अभिलेक्ष प्रणाली

क.3 कर्मचारियों पर अनुशासन

क.4 कम्प्युटरीकृत प्रबन्ध और प्रयोज्य सीमा तक रिट्रीवल इन्फारमेशन

उपाबन्ध 2

न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए अकादमी स्थापित करने के लिए प्रस्ताव

एक––प्रस्तावना

न्यायपालिका की गुणवत्ता और दक्षता में वृद्धि करने के लिए, न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण के हेतु अखिल भारतीय स्तर पर एक अकादमी की स्थापना करना नितान्त आवश्यक है। ऐसी अकादमी की आवश्यकता अगस्त–सितम्बर 1985 को नई दिल्ली में हुए मुख्य न्यायमूर्तियों, मुख्य मंत्रियों और विधि मंत्रियों के संयुक्त सम्मेलन में स्वीकार की गई थी और लगभग उसी आशय का संकल्प पारित किया गया था। संकल्प में यह उपबन्ध किया गया था कि अकादमी की स्थापना केन्द्रीय सरकार द्वारा की जाए और भारत के मुख्य न्यायमूर्ति को परिदर्शक बनाया जाए और यह कि अकादमी, भारत के मुख्य न्यायमूर्ति के परामर्श से नियुक्त किए जाने वाले शासी निकाय के पर्यवेक्षण के अधीन रहे। अतः यह प्रस्तावित है कि "न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षणार्थ राष्ट्रीय अकादमी" के नाम से एक ऐसी अकादमी की स्थापना की जाए।

दो––उद्देश्य

नए भरती हुए व्यक्तियों के लिए प्रशिक्षण और राज्य तथा संघ के पदधारियों के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण अब स्वीकृत राष्ट्रीय प्राथमिकता है। न्यायिक अधिकारियों के लिए ऐसे प्रशिक्षण की आवश्यकता को अब तक राष्ट्रीय स्तर पर उपेक्षित किया जाता रहा है, जिसके परिणाम विकास और न्याय के लिए दुर्भाग्यपूर्ण रहे हैं। न्यायिक अधिकारियों के प्रशिक्षण में किया गया कोई भी विनिधान, प्रजातंत्र और राष्ट्रीय विकास के लिए विनिधान है।

न्यायिक सेवा में प्रवेश करने वाले व्यक्तियों को न्याय प्रशासन में आधारिक प्रशिक्षण की आवश्यकता है। अपने दैनिक कार्यों के लिए उन्हें कुशलता और दक्षता से युक्त किया जाना चाहिए और साथ ही उन्हें राष्ट्रीय विकास (विज्ञान और प्रौद्योगिकी नीति आयोजना को सम्मिलित करते हुए), राष्ट्र निर्माण और राष्ट्रीय एकता के व्यापक परिप्रेक्ष्य से परिचित होना चाहिए। सेवाकालीन प्रशिक्षण को, न्याय प्रणाली प्रबन्ध की दक्षता प्रदान करने के साथ, व्यापक परिप्रेक्ष्य के विकास के अनुरूप बनाया जाएगा।

अकादमी वरिष्ठ अपील न्यायाधीशों के लिए उच्च सेमीनारों की योजना तैयार करेगी। अनेक प्रश्नों––विशेषतः विज्ञान और प्रौद्योगिकी में विधि की भूमिका पर, वरिष्ठ अपील न्यायाधीशों के लिए उच्च परिचर्चाएं आयोजित की जाएंगी जिससे उन्हें आवश्यक परिज्ञानशील दक्षता प्रदान की जा सके।

तीन––स्थान

राष्ट्रीय अकादमी बंगलौर में स्थापित की जा सकती है जहां संयोग से स्थान उपलब्ध है।

चार––शासी निकाय

1. भारत के मुख्य न्यायमूर्ति . . . . परिदर्शक
2. भारत का सेवा–निवृत्त मुख्य न्यायमूर्ति या उच्चतम न्यायालय का सेवा–निवृत्त न्यायाधीश जो भारत के राष्ट्रपति द्वारा परिदर्शक के परामर्श से नाम निर्दिष्ट किया जाएगा . . . . अध्यक्ष
3. भारत के उच्च न्यायालय के दो न्यायाधीश, जो अध्यक्ष द्वारा, परिदर्शक के परामर्श से नाम निर्दिष्ट किए जाएंगे . . . . सदस्य 2
4. उच्च न्यायालयों के चार मुख्य न्यायमूर्ति, जो अध्यक्ष द्वारा, परिदर्शक के परामर्श से नियुक्त किए जाएंगे . . . . सदस्य 2
5. भारत सरकार का विधि और न्याय मंत्री . . . . सदस्य 1
6. कार्मिक और प्रशासन का प्रभारी मंत्री . . . . सदस्य 1
7. भारत सरकार का विधि और न्याय राज्य मंत्री . . . . सदस्य 1
8. भारत के विधि आयोग का अध्यक्ष . . . . सदस्य 1

ङ.5 राज्य के विरुद्ध अपराध–दण्डादेश देने की नीतियां और पैटर्न ।

ङ.6 दण्डादेश देने के विवेकाधिकार की सांविधानिकता ।

ङ.7 दण्डादेश देने के विवेकाधिकार के संबंध में उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की फीड बुक।

च. न्यायिक नीति के संम्बंधित विषय

च.1 खर्चा दिलाना;

च.2 मूल अधिकारों के अधिक्रमण के लिए प्रतिकर दिलाना;

च.3 सिविल और दांडिक न्याय प्रशासन में मानव अधिकार;

च.4 विधि के संबंध में वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकी विकास;

च.5 विधि के माध्यम से राष्ट्रीय विकास और एकता;

च.6 विधायी नीतियों और न्यायिक प्रक्रिया के बीच अन्त:प्रतिक्रिया;

च.7 कार्यपालिक नीतियों और न्यायिक प्रक्रिया के बीच अन्त:प्रतिक्रिया

छ. सामान्य स्थिति ज्ञान

छ.1 सांस्कृतिक और सामाजिक–आर्थिक दशाएं और विधिक और न्यायिक प्रशासन पर उनका प्रभाव ।

छ.2 नयी न्यायिक विचारधारा का ज्ञान और विधि का सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन के साधन और सामाजिक न्याय दान के उपकरण के रूप में उपयोग विधि की प्रक्रिया के माध्यम से शोषण और अन्याय का मुकाबला करना ।

छ.3 ग्रामीण क्षेत्रों का दौरा, हितबद्ध समूहों, प्रभावशाली समूहों और उत्पीड़ित समूहों से चर्चा।

छ.4 विधिक सहायता–सभी रूपों और परिमाण में ।

छ.5 लोक अदालतें।

ऊपर मद क से छ पर वर्णित विषय, (क) और (ख) दोनों प्रकार के पाठ्यक्रमों के पाठ्यक्रम के भाग होंगे, किन्तु जहां तक (ग) में वर्णित सेमीनारों और परिचर्चाओं का संबंध है, मद क, च और छ में वर्णित विषय, ऐसे सेमीनारों और परिचर्चाओं के भाग होंगे ।

व्यावहारिक प्रशिक्षण

उन प्रशिक्षार्थी न्यायाधीशों को, जो नए भर्ती हुए हैं, और जो (क) में वर्णित आधारिक पाठ्यक्रम कर रहे हैं, आधारिक पाठ्यक्रम के एक भाग के रूप में व्यावहारिक प्रशिक्षण भी दिया जाएगा । व्यावहारिक प्रशिक्षण में, सिविल दांडिक और राजस्व न्यायालयों के वरिष्ठ पीठासीन अधिकारियों के साथ बैठना भी सम्मिलित होगा और उन्हें निम्नलिखित प्रक्रियात्मक विषयों का भी शिक्षण दिया जाएगा––

एक सिविल

(क) दैनिक काज लिस्ट

(ख) मामलों की पुकार कराना और वकीलों या पक्षकार के उपस्थित न होने पर उत्पन्न होने वाली स्थिति–न्यायालयीन कार्यवाहियों का नियंत्रण,

(ग) सूचनाओं का जारी किया जाना और तामील रिपोर्ट की संवीक्षा तथा एकपक्षीय कार्यवाहियों के लिए आदेश और प्रक्रिया;

(घ) न्यायालय की शालीनता और नीतिशास्त्र,

(ङ) सि० प्र० सं० के आदेश 10 के अधीन विवाधक विरचित करने के पूर्व पक्षकारों की परीक्षा,

(च) विवाधकों की विरचना;

(छ) डायरी का रखा जाना और साक्ष्य के लिए तारीख नियत करना;

(ज) साक्ष्य अभिलेखन और उसमें उद्भूत होने वाले प्रश्न;

(झ) सुसंगतता और ग्राह्यता के प्रश्न और आक्षेपों के संबंध में कार्यवाही : स्टाम्प का अभाव और दस्तावेजों का रजिस्ट्रीकरण;

(ञ) साक्ष्य का बन्द किया जाना;

क. 5 एक-पक्षीय स्थगन, अन्तरिम आदेशों का प्रबन्ध

क. 6 स्थगन समावेदन

क. 7 पुस्तकालय प्रबन्ध

क. 8 न्यायिक कार्य का मानीटरिंग

क. 9 उच्च न्यायालयों के लिए फीड बुक

क. 10 लोक अदालतों को सम्मिलित करते हुए, विधिक सहायता का प्रबंध।

ख. प्रणाली-प्रबन्ध का प्रशिक्षण

ख. 1 पारस्परिक विषम सांस्कृतिक, संस्थागत, सिद्धान्तात्मक, व्यवहारात्मक प्रणाली।

ख. 2 क्रमबद्ध अन्तर-संबंध:

(क) जेल;

(ख) पुलिस;

(ग) बार;

(घ) विधिक/सामाजिक कर्मण्यतावादी,

(ङ) विधि महाविद्यालय/विभाग,

(च) उच्च न्यायालय।

ग. विधि और विधिक सिद्धान्त

ग. 1 प्रक्रियात्मक न्यायशास्त्र के मूल सिद्धान्त।

ग. 2 सांविधानिक विधि, प्रशासनिक विधि और अन्य महत्वपूर्ण अखिल भारतीय विधान।

ग. 3 न्यायालयिक विज्ञान और अपराध विज्ञान।

ग. 4 साक्ष्य विधि के स्थूल सिद्धान्त, विचारण न्यायालयों में साक्ष्य संबंधी समस्याएं, आदि।

ग. 5 प्रक्रिया विधियां—प्रक्रिया विधियों का उचित उपयोग और उनके अनुचित उपयोग या दुरूपयोग को रोकना।

ग. 6 न्यायिक विवेक के प्रयोग को शासित करने वाले सिद्धान्त।

ग. 7 विलम्ब के कारणों को समाप्त करना।

ग. 8 सिविल और दांडिक निर्णय लेखन की कला।

ग. 9 न्यायिक अधिकारियों के कार्य के कतिपय पहलुओं, न्यायालय-कौशल, आचरण संहिता और नीतिशास्त्र को सम्मिलित करते हुए, न्यायालयों में शिष्टाचार और शालीनता बनाए रखना।

ग. 10 लेखे और वित्तीय मामले।

घ. मूल विधि का विकास

घ. 1 उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय की निर्णयज विधियों का अद्यावधिक ज्ञान।

घ. 2 न्यायिक प्रक्रिया की प्रकृति से परिचित होना।

घ. 3 अनुसूचित जातियों, जनजातियों, स्त्रियों, बालकों और समाज के कमजोर वर्गों की समस्याएं-ग्रामीण निर्धनता, शोषण और अन्याय की समस्याएं।

घ. 4 विधायी विकास की जानकारी।

घ. 5 राज्य की नीति के निदेशक तत्वों की जानकारी।

ङ. दण्डादेश देने का विवेकाधिकार

ङ. 1 दण्डादेश देने के विवेकाधिकार के पैटर्न।

ङ. 2 अपराधियों को परिवीक्षा।

ङ. 3 सामाजिक-आर्थिक अपराध।

ङ. 4 समाज के कमजोर वर्गों के विरूद्ध अपराध-दण्डादेश देने के विवेकाधिकार की समस्याएं।

(ट) बहस;

(ठ) विलम्ब कम करना, प्रक्रिया विधि का अनुचित उपयोग या दुरूपयोग रोकना;

(ड) निर्णय सुनाना;

(ढ) न्यायालय के रजिस्टर, उनका रखा जाना और सुरक्षा;

(ण) राजस्व विभाग, पुलिस विभाग और अन्य शासकीय विभागों का कार्यकरण।

दो दाण्डिक

(क) चालान का पेश किया जाना/प्राइवेट परिवादों का फ़ाइल किया जाना और उनका रजिस्ट्रीकरण;

(ख) जमानत/प्रतिप्रेषण संबंधी कार्य;

(ग) सूचनाएं, समन और वारण्ट जारी करने की प्रक्रिया, अभियुक्त प्रतिवादी पर उनकी तामील और तामील के लि उत्तरदायी अभिकरण,

(घ) आरोप की विरचना, उसके आवश्यक तत्व और उस प्रयोजन के लिए दोनों पक्षों को सुनने की आवश्यकता;

(ङ) दोषी निर्दोष होने के अभिवचन का अभिलेखन;

(च) डायरी का रखा जाना और मामले साक्ष्य के लिए नियत करना;

(छ) अभियोजन/परिवादी का साक्ष्य;

(ज) दं० प्र० सं० की धारा 313 के अधीन अभियुक्त की परीक्षा और उसका महत्व;

(झ) प्रतिरक्षा पक्ष की सूची, उसकी संवीक्षा और प्रतिरक्षा का अभिलेखन;

(ञ) विशिष्ट मामलों में आवश्यकतानुसार न्यायालय साक्षियों को समन करना और उनका साक्ष्य अभिलिखित क की प्रक्रिया;

(ट) मामलों की सुनवाई और बहस में परिहार्य स्थगनों को रोकना और साक्षियों की उपस्थिति सुनिश्चित क की व्यावहारिक पद्धति;

(ठ) विलम्ब कम करना और प्रक्रिया विधियों का अनुचित उपयोग या दुरूपयोग रोकना;

(ण) बहस सुनना;

(त) निर्णय;

(थ) न्यायालय के रजिस्टर, उनका रखा जाना और उनकी सुरक्षा।

क्षेत्रीय अकादमी

ऊपर रेखांकित आधारिक पाठ्यक्रम के पश्चात् राज्य स्तर पर कम से कम दो से तीन मास का प्रशिक्षण होना चाहि ताकि प्रशिक्षार्थी न्यायाधीश, स्थानीय विधियों और विधिक परिपाटी से तथा स्थानीय सामाजिक-आर्थिक दशाओं और स्थानी समस्याओं और कठिनाइयों से परिचित हो सके। यह सर्व प्रथम क्षेत्रीय अकादमियां और तत्पश्चात् राज्य अकादमियां स्थापि करके भलीभांति संभव हो सकता है किन्तु चूंकि क्षेत्रीय अकादमियां और राज्य अकादमियां स्थापित करने में कुछ समय ल सकता है और इसके अतिरिक्त उसमें लागत भी बहुत आएगी, यह सुझाव दिया जाता है कि राष्ट्रीय अकादमी द्वारा अभ्याग अध्यापक वर्ग सुविधा की व्यवस्था की जा सकती है, जो प्रशिक्षार्थी न्यायाधीशों को, आधारिक प्रशिक्षण के पश्चात् शिक्षण के लिए, प्रत्येक राज्य की राजधानी का दौरा कर सकता है। इस अध्यापक वर्ग की सहायता, राज्य सरकार द्वारा उपलब्ध कर जाने वाले स्थानीय अध्यापक वर्ग द्वारा की जा सकती है। इससे राष्ट्रीय अकादमी में अतिरिक्त स्टाफ की आवश्यकता हो किन्तु क्षेत्रीय और राजकीय अकादमियों की शीघ्र स्थापना करने की अपेक्षा अभ्यागत अध्यापक वर्ग की व्यवस्था करने के लि राष्ट्रीय अकादमी में अधिक स्टाफ रखना, अधिक उपयोगी है। तथापि, अंतिम लक्ष्य यह होना चाहिए कि प्रत्येक राज्य क प्रशिक्षार्थी न्यायाधीशों को आधारिक पाठ्यक्रम पूरा होने के पश्चात्, प्रशिक्षण देने के लिए राज्य स्तरीय अकादमी स्थापि करना चाहिए। प्रशिक्षार्थी न्यायाधीशों के लिए, जो नए भर्ती किए गए व्यक्ति होंगे, ऊपर वर्णित आधारिक पाठ्यक्रम, जिस सैद्धांतिक और व्यावहारिक प्रशिक्षण होगा, पूरा करने के पश्चात् संबंधित उच्च न्यायालय में लगभग एक सप्ताह तक माम के संचालन का अवलोकन करना बहुत उपयोगी होगा। इससे वे न्यायिक संस्कृति को हृदयंगम कर सकेंगे, अपने ज्ञान का क्षितिज विस्त कर सकेंगे और न्यायिक प्रक्रिया से भलीभांति परिचित हो सकेंगे।

MGIPF—68 Law/87—26-8-87—310.